वास करते हैं वह मनुष्य परमज्ञान प्राप्त करके भवसमुद्रसे मुक्त होता है तथा देवीलोकमें वास करता है ॥ ९५ ॥ देवीके इन अष्टोत्तर नामोंका पाठ करके वह मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है जिस किसी स्थानमें उक्त नामावली पुस्तकमें लिखित हो ॥ ९६ ॥ उस स्थानमें ग्रहभय और महामारीका भय इत्यादि कुछभी नहीं होता वरन् पर्वकालमें समुद्रकी समान उस स्थानमें सौभाग्यकी वृद्धि होती है ॥ ९७ ॥ अष्टोत्तरशतनामके जपनेवाले मनुष्यको कुछ दुर्लभ नहीं रहता वह देवीका भक्त निश्चयही कृतकृत्यता प्राप्त करता है॥ ९८ ॥ वह साधुव्यक्ति देवीका स्वरूप होता है देवतागण उसको देखकर प्रणाम और उसकी पूजा करते हैं सज्जन मनुष्य जो उनकी पूजा करते हैं उसमें फिर कहना क्या है ? ॥ ९९ ॥ इस अत्युत्तम अष्टोत्तरशतनामके श्रद्धासहित पाठ करनेपर पितृगण तृप्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं ॥ १०० ॥ यह सम्पूर्ण स्थान साक्षात् संविन्मय मुक्तिक्षेत्र हैं अतएव हे राजेन्द्र ! बुद्धिमान् मनुष्य इन सम्पूर्ण सिद्धपीठोंका आश्रय करते हैं ॥ १०१ ॥ हे महाराज ! आपने महेश्वरीका जो जो रहस्य और अतिरहस्यका विषय पूंछा था वह सम्पूर्ण मैं ने वर्णन किया इससमय आप अब क्या सुननेकी इच्छा करते हैं ? सो कहिये ॥ १०२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने पहले कहा है कि, अनन्तर यह परमज्योति हिमालयके पृष्ठमें आविर्भूत हुई थी इससमय उस परमज्योतिका विषय विस्तार-सहित मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस शक्तिका कथामृत पान करनेसे विरत होगा यद्यपि सुधापायी देवताओंको किसी प्रकार मृत्युकी सम्भावना हो तथापि देवीकथामृतपान करनेवालोंके पक्षमें उसकी कुछ सम्भावना नहीं होती ॥२॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवीके प्रति जिसप्रकार आपकी एकान्त भक्ति देखता हूं, इससे मुझको बोध होता है कि आप महात्माओंसे शिक्षित कृतकृत्य भाग्यवान् और धन्य हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अब मैं परमपुरातत्व वर्णन करता हूं श्रवण करो देवादिदेव महेश्वरने उस अग्निदग्ध सतीके देहको धारण कर भ्रान्त चित्तसे भूमण्डलपर भ्रमण करते करते जिस स्थानमें स्थिर होकर अवस्थिति की ॥ ४ ॥ उस स्थानमें वह निय-

तेन्द्रिय संसारज्ञानरहित और समाधियुक्त होकर देवीके स्वरूपका ध्यान करते करते काल व्यतीत करनेलगे ॥ ५ ॥ इस समय देवीके विना चराचरयुक्त यह त्रैलोक्यमण्डल ऐश्वर्यरहित और पर्वत, समुद्र तथा द्वीप सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल शक्तिविहीन होगया ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण जीवोंके हृदयका आनन्द शुष्क होगया सम्पूर्ण मनुष्य चिन्ताके कारण जर्जरचित्त हो दीनभावसे अवस्थिति करने लगे ॥ ७ ॥ सब दुःखसागरमें निमग्न होकर रोगग्रस्त होनेलगे ग्रहोंकी विपरीत गति और देवताओंकी विपरीत अवस्था होनेलगी ॥ ८ ॥ राजालोग सतीके अभावसे आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख परम्पराके आधीन होकर स्थिति करनेलगे ॥ ९ ॥ इसीसमय तारकनामक महासुर ब्रह्माजीसे वर प्राप्तकर अत्यन्त दुर्जय हो उठा वह वीर मदसे मत्त हो त्रिभुवनको जीत त्रैलोक्यका एकमात्र अधीश्वर होगया ॥ १० ॥ प्रजापति ब्रह्माके "शिवका औरस पुत्र तुम्हारा हन्ता होगा" इसप्रकार वरदान करनेपर और उससमय शिवके औरस पुत्रका अभाव होनेके कारण वह महासुर सदा आनन्दसे उन्मत्त होकर जयका अभिमान करनेलगा ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण देवता उसके उपद्रवसे स्थानभ्रष्ट होकर शिवका औरस पुत्र न होनेके कारण दुस्तर चिन्तासागरमें निमग्न हुए ॥ १२ ॥ सती देवीके इससमय प्राण त्यागनेपर महादेव भार्यारहित हुएहैं अतएव इस समय किसप्रकार उनके सुतोत्पत्ति सम्भव होसक्ती है? हम अत्यन्त भाग्यहीन हैं कारण कि शंकरकी पुत्रोत्पत्तिके अभावसे हमारा कार्य सिद्ध होना अत्यन्त कठिन होगया ॥ १३ ॥ इसप्रकार चिन्तासे कातर होकर सम्पूर्ण देवता वैकुण्ठमण्डलमें गये और निर्ज्जनमें भगवान् विष्णुसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करनेपर वह उस विषयका उपाय कहनेलगे ॥ १४ ॥ हे सुरगण! जब मणिद्वीपनिवासिनी वाञ्छाकल्पद्रुमरूपिणी कल्याणदायिनी करुणामयी देवी भुवनेश्वरी हमारे लिये सदा जागरित रहतीहै तब तुम चिन्तासे व्याकुल क्यों होतेहो ॥ १५ ॥ वह जगज्जननी केवल हमारे अपराधसे हमको शिक्षा देनेके लिये उपेक्षा दिखाती हैं हे देवताओ! तुम निश्चय जानो कि, वह शिक्षा हमारे विनाशके निमित्त नहीं है हमारे प्रति करुणा दिखानेके लियेही वह करती हैं ॥ १६ ॥ जिसप्रकार अपनी सन्तानके लालन पालन और ताड़न विषयमें माताकी दयाहीनता नहीं दिखाई देती इसीप्रकार तुम्हारे गुण दोष विषयमें वह जगन्नियन्त्री जगज्जननी कभी निर्दय नहीं होगी ॥ १७ ॥ सन्तानसे अपराध पद पदपर होता है त्रैलोक्यमें एकमात्र जननीके

विना और कौन उसको सहसक्ता है ? ॥ १८ ॥ अतएव तुम शीघ्रही एकान्त भक्तिसहित उन्हीं परमजननी परमेश्वरीकी शरणागत होओ अवश्यही वह तुम्हारे कार्यसाधनमें यत्न करेंगी ॥ १९ ॥ देवाधिपति महाविष्णु देवताओंसे इसप्रकार आदेशकर निजजाया लक्ष्मीके सहित देवीकी आराधनाके लिये देवताओंको संग ले शीघ्र निकले ॥ २० ॥ फिर शीघ्र शैलाधिपति हिमालयमें जाय समस्तही पुरश्चरण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! अम्बायज्ञके जाननेवाले देवताओंने अम्बा-यज्ञ आरम्भ किया और सम्पूर्णही तृतीयादि व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥ २२ ॥ कोई कोई देवीकी समाधि अर्थात् उनके धारावाहिक ध्यानमें परायण हुए कोई कोई निरन्तर उनका नाम जपने लगे कोई कोई देवीसूक्त जप करनेमें प्रवृत्त हुए कोई कोई नामपरायण ॥ २३ ॥ अथवा कोई कोई मंत्रपरायण हुए और कोई कोई कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतपरायण हुए कोई कोई अन्तर्योगमें कोई कोई प्राणाग्निहोत्र योगमें अथवा कोई कोई न्यासादिमें नियुक्त हुए ॥ २४ ॥ और कोई २ अतन्द्रित होकर मायाबीजमंत्रद्वारा परमाशक्ति भुवनेश्वरीकी पूजा करने लगे हे महाराज ! इसप्रकार देवताओंको बहुत वर्ष व्यतीत होगये ॥ २५ ॥ फिर एक दिन चैत्रमासकी नवमी तिथि और भृगुवारमें वह श्रुतिबोधित शक्तिसम्बन्धीय परमज्योतिः अकस्मात् उनके सामने प्रगट हुई ॥ २६ ॥ यह तेज करोड करोड विद्युत्की समान अरुणवर्ण और करोड करोड चन्द्रमाकी समान शीतल था उस परमज्योतिकी प्रभा करोड़ करोड़ सूर्य्यकी समान थी चारों ओर अवस्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेद उसका स्तव करते थे वह तेजोराशि क्या ऊर्द्ध्वमें क्या पार्श्वमें क्या मध्यमें किसी दिशामें परिच्छिन्न नहीं हुई ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसका आदिभी नहीं और अन्तभी नहीं वह हस्तपादादि अंगसंयुक्त स्त्रीरूप पुरुषरूप अथवा नपुंसकरूप भी नहीं थी ॥ २९ ॥ देवताओंने प्रथम उस तेजकी प्रभासे हत होकर नेत्र मूंदलिये किन्तु क्षणकालमें ही धैर्य्य अवलम्बन कर ज्योंही नेत्र खोले ॥ ३० ॥ त्योंही वह परमज्योति अतिमनो-हर दिव्य रमणीरूपसे प्रकाशित हुई उस मनोरमाङ्गी नवयौवना कुमारीके ॥ ३१ ॥ कमलकलिकानिन्दित दोनों कुच ऊँचे परम शोभायमान होरहे थे कमरमें किंकिणी मेखलाके शब्द और चरणोंसे मनोहर मंजीरकी ध्वनि आती थी ॥ ३२ ॥ उसके चारों हाथोंमें कनकवलय चारों बाहुओंमें केयूर ग्रीवादेशमें ग्रैवेयक गलदेशमें अमूल्य मणि हार गलबन्ध और परमोज्वल प्रभाजाल विस्तारित होकर शोभा पारहा था

॥ ३३ ॥ उनके कर्ण और कपोलके मध्यवर्ती केशावली नवकेतकीपुष्पपत्रोपरि विराजित दीप्तप्रभ नीलवर्ण भ्रमरावलीके समान समुज्ज्वल शोभा पाती है नितम्बबिम्ब सुघटित और अत्यन्त मनोहर रोमराजि नाभिमें विराजित होकर अपूर्व शोभा सम्पादन करती है ॥ ३४ ॥ दीप्यमान कनकताटङ्कमें उज्ज्वल परम सुन्दर मुखकमल कर्पूरखण्डमिश्रित ताम्बूलसे पूर्ण ॥ ३५ ॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र शोभायमान दोनों भौंए चौड़ी नेत्रोंने उपांतभागमें कोकनदके समान अर्थात् लालकमलके समान शोभा धारण की है नासिका ऊंची अधर बिम्बाफलके समान अति मनोहर ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण दाँत कुन्द कलीके समान अत्यन्त मनोहर गलेमें लम्बायमान मोतीयोंका हार विराजमान है मस्तकके ऊपर हीरक और मणिरत्नमें खचित प्रदीप्त मुकुटालङ्कार कर्णमें चन्द्ररेखाकी समान करनफूल ॥ ३७ ॥ केशपाश मल्लिका और मालतीकी मालासे सुशोभित ललाट काश्मीरबिन्दुद्वारा सुसज्जित और तीनों नेत्र मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा सम्पादन करते हैं ॥ ३८ ॥ उनके एक हस्तमें पाश और दूसरे हाथमें अंकुश तथा अन्यान्य दोनों हाथ वर और अभयदान भङ्गिमासे विराजित देहकी क्रान्ति दाड़मीके फूलकी समान परिधान अरुणवर्ण अम्बर परमशोभा विस्तार करते हैं ॥ ३९ ॥ देवताओंने इसप्रकार समस्त शृङ्गारवेषधारिणी समस्त वाञ्छापूरिणी सम्पूर्ण देवताओंसे नमस्कृत हास्याननी अखिलमोहिनी ॥ ४० ॥ अखिलजननी प्रसादसुमुखी कपटतारहित करुणाकी मूर्त्तिरूपिणी अम्बिकादेवीको सामने देखा ॥ ४१ ॥ उस करुणामयी मूर्त्तिको देखकर देवताओंने प्रणाम किया किन्तु बाष्पभारसे कण्ठ रुकजानेके कारण कुछभी न कहसके ॥ ४२ ॥ फिर अति कष्टसे धैर्य अवलम्बनकर भक्तिमें भर शिर झुकाय प्रेम अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जगदम्बिकाका स्तव करने लगे ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा हे जगदम्बिके! आप देवी और महादेवी हैं तथा आपही शिवरूपिणी हैं हम सदा संयतचित्तसे आपको वारंवार प्रणाम करते हैं. हे देवि! आपही साम्यावस्थाविशिष्ट मायोपाधियुक्त ब्रह्मरूपिणी प्रकृति और आपही सर्वकल्याणरूपिणी हैं हम संयतमनसे आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे जननि! आपही योगियोंके हृदयमें अनलशिखाकी समान अरुणवर्णसे दीप्ति पाती हैं आपही ज्ञानप्रभासे दीप्यमान हैं. हे मातः! आपही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें चैतन्यरूपसे सर्वत्र प्रकाशित होती हैं ब्रह्मादि देवता और मानवादि जीवगण कर्मफलप्राप्तिके लिये आपकी

सेवा करते हैं हे देवि! आपही संसारसागरसे तारनेवाली हैं अतएव हम घोर संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये आपकी शरणागत होकर आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ हे मातः ! प्राणादिपञ्चवायुकी सहायतासे जो सम्पूर्ण भावप्रकाशवाक्य उच्चारित होते हैं हम उसको माया कहते हैं वह माया हमारी कामधेनु अर्थात् हम उस कामधेनुरूपिणी मायासे इच्छानुसार धन, मान और अन्नादि दुहकर अहङ्कारमें उन्मत्त होते हैं हे मातः ! आप हमारी वही भाषा-स्वरूप हैं अतएव आप सन्तुष्ट होकर हमारी वाञ्छा पूर्ण कीजिये ॥ ४६ ॥ हे देवि! आप सर्वसंहारक कालकाभी संहार करती हैं भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा सदा आपकी स्तुति करते हैं हे मातः ! आपही विष्णुशक्ति लक्ष्मी स्कन्दमाता शिवशक्ति पार्वती ब्रह्मशक्ति सरस्वती देवमाता अदिति और आपही सतीनाम्नी दक्षकी कन्या हैं हे मातः ! आप ही इसप्रकार अनेकरूप धारण करके अखिलब्रह्माण्डपूत और सम्पूर्ण को शान्तिदान करती हैं अतएव हे देवि ! आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥ हम आपको ही महालक्ष्मी जानते हैं हम आपको सर्वशक्तिरूपिणी देवी भगवती जानकर आपका ध्यान करते हैं हे जननि ! आप ही हमको अपने श्रवण, मनन और ध्यानमें प्रेरण कीजिये ॥ ४८ ॥ हे देवि ! आप ही विराट्रूपिणी हैं आपको नमस्कार है आपही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भरूपिणी हैं आपको नमस्कार है आप ही महदादि षोड़शविकृतिरूपिणी हैं आपको नमस्कार है हे मातः ! आपही ब्रह्मारूपिणी हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥ जिनके सृष्टि अविद्याजनित ज्ञानसे यह जगत्रज्जू और स्रगादि (मालाआदि) में सर्पकी समान सत्य जानकर भ्रम होता है फिर जिनके सृष्टिविद्याजनित ज्ञानसे वह भ्रम दूर होता है हम भक्तिनम्रमनसे उन्हीं सर्वान्तर्यामिनी भगवती भुवनेश्वरीका ध्यान करते हैं ॥ ५० ॥ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यस्थ तत् शब्दकी प्रतिपाद्य जो सम्पूर्णदेवताओंकी तात्पर्यभूमि चैतन्यरसरूपिणी और अखण्डानन्दस्वरूप ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ५१ ॥ तथा जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोशके अतिरिक्त हैं जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी और जो त्वम्पदकी भी लक्ष्यार्थ हैं हम उन्हीं ज्ञानब्रह्मस्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५२ ॥ हे मातः ! आपही प्रणवरूपिणी ह्रींकारमूर्ति नानाविधमन्त्रात्मिका और करुणामयी हो हम आपके चरणकमलोंमें वारम्वार प्रणाम करते हैं ॥ ५३ ॥

देवताओंके इसप्रकार उन मणिद्वीपनिवासिनी जगदम्बिकाके स्तव करनेपर प्रमत्त कोकिलके कण्ठकी समान कण्ठवाली भगवती मधुर वचनों द्वारा उनसे कहनेलगी ॥ ॥ ५४ ॥ देवी बोली हे देवताओ ! तुम किसलिये यहां आये हो ? तुम्हारा क्या कार्य है सो कहो मैं सदाही भक्तोंकी वाञ्छाको कल्पतरु और वर देनेवाली विद्यमान रहती हूं ॥ ५५ ॥ तुम मेरे भक्त हो मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या चिन्ता है ? मैं तुमको दुःखसागरसे उद्धार करूंगी ॥ ५६ ॥ हे देवताओ ! तुम मेरी यह प्रतिज्ञा सत्यही जानो हे राजन् ! देवतागण देवीके यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ और जगन्मातासे अपना मनोदुःख निवेदन करनेलगे देवता बोले हे परमेश्वरि ! आप सर्वज्ञ और सब जगत्की साक्षी है इन तीनों जगतोंमें आपसे अज्ञात कुछ नहीं है ॥ ५८ ॥ हे मातः ! शिवे ! तारक नामक असुर हमको दिनरात दुःख देता है ॥ ५९ ॥ विश्वस्रष्टा विधाताने शिवके औरसपुत्रसे उसका वध निर्दिष्ट किया है. हे महेश्वरि ! इस समय शिवगृहिणी सतीने देह त्यागकिया है सो आप जानती हैं ॥ ६० ॥ जो सर्वज्ञ हैं फिर उनके सामने पामरगण क्या कहे हैं हे जगदम्बिके ! हमने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त संक्षेपसे वर्णन किया और हमारा अन्यान्य सम्पूर्ण दारुण दुःख आप मनमें जानसक्ती हैं ॥ ६१ ॥ हम अधिक और क्या कहैं ? आपके चरणकमलोंमें हमारी अचल भक्ति सदा विद्यमान रहे यही हमारी मुख्य प्रार्थना है और शिवकी सुतोत्पत्तिके लिये आप देह धारण कीजिये यह हमारी दूसरी प्रार्थना जानिये ॥ ६२ ॥ देवताओंके यह वचन सुन प्रसादसुमुखी परमेश्वरी उनसे कहने लगी मेरी शक्ति जो गौरीरूपसे हिमालयमें उत्पन्न होगी ॥ ६३ ॥ वही शिवसीमन्तिनी होकर पुत्रोत्पादनपूर्वक उसके द्वारा तारकासुरका वध करके तुम्हारा कार्यसाधन करेगी और मेरे चरणकमलोंमें तुम्हारी प्रेमपूर्ण निश्चल भक्ति होगी ॥ ६४ ॥ हिमालय भी अत्यन्त भक्तिसहित एकान्तमनसे मेरी उपासना करते हैं अतएव उनके गृहमें मेरा जन्म ग्रहणकरना अत्यन्त प्रिय जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! गिरिराज हिमालय भी उनके अत्यन्त अनुग्रहसूचक वचन सुनकर प्रेमजनित बाष्पमें भर रुद्धकण्ठ हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे त्रैलोक्यसाम्राज्ञी भुवनेश्वरीसे कहनेलगे ॥ ६६ ॥ हे देवि ! आप जिसके प्रति अनुग्रह करती हैं उसको आप अत्यन्त महत् करदेती हैं नहीं तो जड़ और स्थावर पाषाणपुञ्ज मैं कहाँ ? और वाक्य तथा मनके अगोचर

सच्चिदानन्दरूपिणी आप कहाँ ? हमारे गृहमें उत्पन्न होकर आप हमारे प्रति इतना अनुग्रह कर क्यों प्रकाश करती यही आपके अनिर्वचनीय महत्त्वका परिचयप्रदान करता है इसमें सन्देह नहीं॥ ६७॥ हेविमले!हमारे पक्षमें आपके जनकत्वलाभका अनन्त जन्म अश्वमेधादिजनित अथवा समाधिजनित पुण्यके अतिरिक्त और कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ ६८ ॥ अहो! हमारे प्रति आपने क्या अनुग्रह किया है " जगन्माता जगद्धात्री इन हिमालयकी कन्या हुई अतएव यह व्यक्ति ही धन्य और भाग्यवान् है " अबसे हमारी इसप्रकार अतुल कीर्ति इस सम्पूर्ण जगत्में प्रचलित होगी ॥६९॥जिनके जठरमें करोड़ करोड़ ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं वह जिनकी कन्या हुई पृथ्वीतलमें उसकी समान सौभाग्यवान् और पुण्यवान् और कौन होसक्ता है ? ॥ ७० ॥ जिनके वंशमें मेरी समान पुण्यवान् मनुष्यने जन्म ग्रहण किया है मेरे उन पितरोंके वासार्थ कैसे परमोत्कृष्ट समस्त स्थान निर्मित हुए हैं वह मैं नहीं कहसक्ता ॥ ७१ ॥ हे मातः परमेश्वरी ! आपने जिस प्रकार प्रेमपरिपूर्ण होकर कृपा प्रकाश की है इसी प्रकार आप हमसे अपना सर्व वेदान्तसिद्ध स्वरूप ॥ ७२ ॥ और श्रुतिसम्मत भक्तियुक्त ज्ञान तथा योगका विषय कीर्त्तन कीजिये क्योंकि हम उसी ज्ञानके बलसे आपका स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे॥ ७३ ॥व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालयके इसप्रकार स्तुतियुक्त वचन सुनकर भुवनेश्वरीने प्रसन्न मुखसे श्रुत्युक्त गूढ रहस्यका विषय कहना आरम्भ किया ॥ ७४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

देवीने कहा हे देवताओं ! जिसके श्रवणमात्रसे जीवगण मेरा स्वरूपत्व प्राप्तकरनेमें समर्थ होते हैं मैं इस समय वही विषय वर्णन करती हूं तुम समाहित चित्तसे श्रवण करो ॥ १ ॥ हे गिरिवर ! सृष्टिके पूर्वमें एकमात्र मैंही विद्यमान थी अन्य और कुछ नहीं था मेरेही आत्मस्वरूपको चित् संवित् और परब्रह्म इत्यादि नामसे निर्देश किया है ॥ २ ॥ मेरा आत्मा अनुमानके अतीत लक्ष्यके अतीत उपमाके अतीत और जन्ममरणादिविकारके भी अतीत पदार्थ है मेरेही आत्माकी स्वतः सिद्ध एक शक्ति है यह शक्ति मायानामसे विख्यात है ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञानद्वारा

मायाका विनाश होता है यह माया सती अर्थात् सदा नित्य नहीं है और मायाके न होनेसे व्यावहारिकसत्ताका विरोध होनेके कारण असती भी नहीं है सत्ता और असत्ताकी स्थिति सम्भव नहीं होसक्ती अतएव माया सती और असती यह उभयात्मिका भी नहीं होसक्ती इसप्रकार अनिर्वचनीय वस्तुरूप मायाशक्ति मोक्षकालपर्यन्त विद्यमान रहती है ॥ ४ ॥ मेरी यह अनादि मोक्षपर्यन्त स्थायिनी मायाशक्ति अग्निकी उष्णताके समान सूर्यकी मरीचिके समान चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान स्वभावसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥ सुषुप्तिकालके समय जीवोंका व्यवहार जिसप्रकार उसमें लीन होता है इसीप्रकार प्रलयकालके समय जीवोंके कर्मसमूह जीव और काल यह समस्तही अभिन्न भावसे मायामें लीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे गिरिवर! यद्यपि मैं निर्गुण हूं तथापि ऐसी मायाशक्तिके संयोगसे जगत्‌की कारण स्वरूप हुई हूं किन्तु जो माया मेरा आश्रय करके रहती है उस मायाके मुझको आवरण करनेसे मायामें आश्रयावरकता दोष विद्यमान रहता है हे हिमवान्! तुमको जानना चाहिये कि मेरे माया और अविद्या नामसे दो रूप हैं तिनमें विद्यारूपिणी प्रथम इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष नहीं है और अविद्यारूपिणी दूसरा इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष विद्यमान है इसके द्वाराही जीवोंकी सृष्टि होती है और विद्याके द्वारा जीवगण मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ मायाके सहित चैतन्यका संयोग होनेपरही वह मायाप्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् चिदाभासही जगत्‌का निमित्तकारण है और यह माया प्रपञ्चरूप परिमाण समवायिकारण कहा जाता है ॥ ८ ॥ कोई कोई शाखाध्यायी वेदके जाननेवाले इस मायाको तप कोई कोई तम कोई कोई जड कोई कोई ज्ञान अथवा कोई कोई माया प्रधानप्रकृति अजा और शक्ति नामसे निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ शैवशास्त्रतत्वज्ञ पंडितलोग उसको विमर्श और अन्यान्य वेदतत्वार्थचिन्तक कोविदगण अविद्या कहकर निर्देश करते हैं फलतः यह माया समस्त वेदान्तिगणोंकी उपजीव्य (निर्वाहक) है इसप्रकार निगमादि शास्त्रमें माया अनेक नामोंसे कही गई है ॥ १० ॥ जो वस्तु दृश्यमान हैं वही वही वस्तु जड हैं इस अभिचारी लक्षण हेतु मायाका जडत्व और स्वाधिष्ठान ज्ञाननाशहेतु मिथ्यात्व प्रतिपादित होता है किन्तु चैतन्य दृश्य पदार्थ नहीं है अतएव उसको जड़भी नहीं कहा जाता ॥ ११ ॥ चैतन्य स्वप्रकाश है वह अन्यके द्वारा प्रकाशित नहीं होता क्योंकि चैतन्य अन्यद्वारा प्रकाशित होता है यह

स्वीकार करनेसे चैतन्य प्रकाशक प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥ वह अन्यद्वारा प्रकाशित होताहै इसप्रकार अनवस्था दोष उपस्थित होता है स्वयंप्रकाश पदार्थकी स्थिरता नहीं है यहभी नहीं कहा जाता क्योंकि उसमें कर्म्म कर्त्ताका विरोध होता है एक पदार्थमें ही एक कालमें कर्तृत्व और कर्म्मत्व नहीं रहसक्ता अतएव दीपककी समान चैतन्यको स्वप्रकाश पदार्थ स्वीकार करना चाहिये ॥ १३ ॥ चैतन्य स्वयं प्रकाशमान पदार्थ होनेपरभी अन्य चन्द्र सूर्य्यादि पदार्थोंकोभी प्रकाशित करता है अतएव हे पर्व्वतवर! मेरे संवित् रूप तनुका नित्यत्व सिद्धहुआ ॥ १४ ॥ कारण कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओंमें दृश्य पदार्थका व्यभिचार होता है किन्तु किसी अवस्थामें ही सम्वित् वा चैतन्यका व्यभिचार अनुभव नहीं होता क्योंकि जो मैंने जाग्रत अवस्थाका अनुभव किया है वही मैं स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका अनुभव करती हूं मैं इस समय सोती थी, इसप्रकार अनुभव किया अतएव सम्वित् पदार्थका कभी व्यभिचार नहीं होता ॥ १५ ॥ बौद्धगण कहते हैं कि जिसप्रकार सम्वित्का अनुभव होता है इसीप्रकार सम्वित्के अभावकाभी अनुभव होता है जो सत् है वही क्षणिक है इसप्रकार अनुमानद्वारा ज्ञानका भी अनित्यत्व प्रतिपादित होता है इससे कहाजाता है कि यद्यपि सम्वित्के अभावका अनुभव होता है तथापि जिस साक्षीद्वारा उस सम्वित्के अभावका अनुभव होता है वही साक्षी सम्वित् वपु है अर्थात् ज्ञानशरीररूपसे प्रतिपन्न होता है क्योंकि साक्षी ज्ञानका नित्यत्व सबको ही स्वीकार करना होता है ॥ १६ ॥ अतएव अनवद्य सत् शास्त्रोंके तत्वज्ञ पंडितगण कहते हैं कि सम्वित् नित्य और परम प्रेमका आस्पद होनेसे वह आनन्दस्वरूप है कारण कि असुख कभी परम प्रेमका आस्पदीभूत नहीं होसक्ता ॥ १७ ॥ और "मैं हूं" जीवोंका इस प्रकार अनुभव नहीं होता किन्तु "मैं विद्यमान हूं" इसप्रकार प्रेम सम्पूर्ण जीवोंके आत्मामें प्रतिष्ठित रहता है यदि आत्माका आनन्दरूपत्व न हो तो इसप्रकार आत्मप्रेम कभी संभव नहीं होता अतएव प्राणिमात्रके अनुभव हेतु सम्वित्का आनन्दरूपत्व सर्वथा सिद्ध हुआ है हे गिरिराज! यह सम्पूर्ण जगत्प्रपंच मायानिर्मित है अतएव वह मिथ्या भ्रम होनेसे सर्पादि मिथ्या पदार्थका जिसप्रकार रज्जु इत्यादिके सहित सम्बन्ध नहीं होता इसी प्रकार इस जगत्के सहित मेरा (आत्माका) असङ्गत्व भलीभांति सिद्ध हुआ और यह सम्पूर्ण संसार मिथ्या और परिच्छेद्य होनेसे मेरा आत्मस्वरूपिणीका अपरि-

छिन्नता प्रमाणित होती है ॥ १८ ॥ यदि कोई कहै कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है वह आत्माका धर्म है यह भ्रान्तिविलास है क्योंकि यदि आत्माका धर्म होता तो अवश्यही उसकी जड़ता संघटित होती इसमें सन्देह नहीं ज्ञानका जडत्व सम्भव नहीं होता अतएव अन्य कहीं भी ज्ञानका जडपरिणामित्व दिखाई नहीं देता ॥ १९ ॥ यदि कहो कि तो ज्ञानका जड़त्व हो वहभी नहीं होसक्ता क्योंकि ज्ञान भी चित्स्वरूप और आत्मा भी चित्स्वरूप है चित् पदार्थका धर्मत्व नहीं और चित्पदार्थ चित्से भी भिन्न नहीं होसक्ता अतएव चिद्रूप ज्ञानका धर्माधर्मभाव किसप्रकार सम्भव होसक्ता है ? ॥ २० ॥ अतएव आत्मा सर्वदाही ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप सत्यस्वरूप पूर्ण संगरहित और द्वैतवर्जित है ॥ २१ ॥ यह आत्मा कामना और कर्मादियुक्त अपनी मायाद्वारा पूर्वानुभूत संस्कार वशसे काल और कर्मके विपाकानुसार ॥ २२ ॥ चौवीस तत्वोंके अविवेक-जनितही इसप्रकार सृष्टिविषयमें इच्छावान् होता है हे गिरिवर ! सोता हुआ पुरुष जिस प्रकार पूर्वसंस्कारसे अबुद्धिपूर्वक नींदसे उठता है इसीप्रकार आत्माकी यह सृष्टिभी कालकर्मके संस्कार अबुद्धिपूर्वकही साधित होती है ॥ २३ ॥ हे अचलेन्द्र ! मैंने जो तत्वका विषय वर्णनकिया यही सर्व्वोत्तम और मेरा अलौकिक रूपमात्र है वेदमें यही अव्याकृत अव्यक्त और मायाशबल कह-कर उल्लिखित हुआ है ॥ २४ ॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इसको सर्व कारणोंका कारण सब तत्वका आदिभूत तथा सच्चिदानन्दविग्रह कहकर निर्देश करतेहैं ॥ २५॥ ज्ञान और क्रियासंयुक्त समस्त कर्म्म घनीभूत होनेसे वह ह्रींकार मंत्रका वाच्य होताहै तत्वदर्शी महर्षिगण उस ह्रींकाररूप मायाबीजकोही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व कहकर उल्लेख करते हैं ॥ २६ ॥ उस ह्रींकारवाच्य महत्स्वरूप मायाबीज रूप आदितत्त्वसे क्रमानुसार शब्दतन्मात्ररूप अपञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है अनन्तर उससे स्पर्शात्मक वायु अनन्तर उससे क्रमानुसार रूपात्मक तेज ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त रसात्मक जल तदनन्तर गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है पंडित-लोग कहतेहैं कि आकाशगुण एकमात्र शब्द है वायुका गुण शब्द और स्पर्श है ॥ २८ ॥ तेजका गुण शब्द स्पर्श और रूप जलका गुण शब्द स्पर्श रूप और रस है॥२९॥ तथा शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध यह पांच पृथ्वीके गुण हैं इन अपञ्ची कृत भूतोंसे व्यापक सूत्र उत्पन्न होता है वही लिङ्गदेहनामसे कहागया है ॥ ३० ॥

यह सूत्र अर्थात् लिंगदेह सर्वप्राणात्मक और यही परमात्माका सूक्ष्म देह है पूर्वमें जो कहागया है जिसमें जगत्का बीज प्रतिष्ठित और जिससे लिङ्गदेहकी उत्पत्ति है वही परमात्माका कारण देह है, पूर्व्वोक्त रूपसे अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत उत्पन्न होनेपर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर उनसे पञ्चीकरण द्वारा जिसप्रकार पञ्चीकृत भूतकी उत्पत्ति होती है इस समय उसका ही नियम कहती हूं हे गिरिराज! पूर्वोक्त पञ्चमहा भूतोंके प्रत्येकको दो भागोंमें विभक्त करके ॥ ३३ ॥ और उनके एकएक भागको पुनर्वार चारभागमें विभक्त करके फिर एक २ सबमें से ले प्रत्येकमें मिलावै इस प्रकार यह अष्टमांश पंचीकरण लानेसे वह पंचपंच अंशयुक्त हो एक एक स्थूल महाभूत होता है ॥ ३४ ॥ इस पंचीकृत भूतपंचकका कार्य विराड्देह है वह परमेश्वरका स्थूलदेह कहा गया है इन पंचभूतस्थित प्रत्येकके सत्वांशसे श्रोत्र (कान) त्वगादि (त्वचाआदि) पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३५ ॥ उक्त सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके प्रत्येकका सत्वांश मिलित होकर एक अन्तःकरण होता है यह अन्तःकरण वृत्तिभेदसे चारप्रकार है ॥ ३६ ॥ जब उसका संकल्प और विकल्पात्मक कार्य होता है तब उसको मन जब संशयविहीनरूपसे निश्चित ज्ञानरूप कार्य होता है तब उसको बुद्धि ॥ ३७ ॥ जब अनुसंधानरूप वृत्ति होती है तब चित्त जब अहंकृतिस्वरूप आत्मवृत्तिसमन्वित होता है तब उसको अहङ्कार कहते हैं ॥ ३८ ॥ उन पंचभूतके प्रत्येक रजअंशसे वाक् पाणी पाद पायु (गुदा) और उपस्थनामक पंच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है उनमें प्रत्येकके सम्पूर्ण रजअंशमिलित होकर प्राण अपान समान उदान और व्यान यह पंच प्राणवायु उत्पन्न होती हैं ॥ ३९ ॥ उनमें प्राणवायु हृदयमें अपानवायु गुह्यमें समानवायु नाभिस्थलमें उदान वायु कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें व्याप्त होकर स्थिति करती है ॥ ४० ॥ पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय पंच वायु और बुद्धि तथा मन यह सत्रह पदार्थ मिलित होकर ॥ ४१ ॥ मेरे सूक्ष्म शरीर अथवा लिंगदेहकी उत्पत्ति होती है, उसमें जो प्रकृति स्थिति करती है वह दो भागमें विभक्त है ॥ ४२ ॥ एक शुद्ध सत्वात्मिक माया और दूसरी गुणमिश्रित मलिनसत्वप्रधान अविद्या कही जाती है जो स्वाश्रयको आवृत न करके रक्षा करती है वही माया शब्दसे उक्त हुई है ॥ ४३ ॥ इस स्वाश्रयकी अव्यामोहकारिणी शुद्ध सत्व प्रधान मायामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही ईश्वरनामसे कहागया है शुद्धसत्वप्रधान माया तदाधार ब्रह्मको

आवरण न करनेके कारण यह स्वाश्रयज्ञानवान् अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जानती है और सर्वव्यापित्व हेतु तथा सर्वत्र इसके ज्ञानावरणके अभावहेतु इसको सर्वज्ञ कहा जाता है और अचिन्त्य मायाशक्तिविशिष्ट होनेके कारण सर्वकर्ता और सम्पूर्ण जगत्का अनुग्रह करनेवाला कहा जाता है ॥ ४४ ॥ और मलिनसत्वप्रधान अविद्यामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह जीवनामसे अभिहित हुआ है॥ ४५॥ मलिनसत्वप्रधान अविद्या तदाश्रयरूप आनन्द करनेके कारण यह जीव सर्वदुःखका आश्रय होता है उक्त जीव और ईश्वर दोनोंकेही अविद्या और विद्याद्वारा तीन देह होते हैं ॥ ४६ ॥ इन तीनों देहके अभिमानहेतु तीन नाम हैं जीव कारणदेहाभिमानी होनेसे उसको प्राज्ञ सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे तैजस ॥ ४७ ॥ और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे विश्व कहा जाता है और ईश्वरभी कारणदेहाभिमानी होनेसे ईश सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे ' सूत्र ' और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे ' विराट् ' नामसे अभिहित होता है ॥ ४८ ॥ प्रथम जीव व्यष्टि देहत्रयाभिमानी और ईश्वर समष्टिदेहत्रयाभिमानी होता है, यह सर्वेश्वर निरन्तर आनन्दानुभवहेतु तृप्त होनेपरभी जीवके प्रति मोक्षलाभरूप अनुग्रह करनेकी इच्छासे ॥ ४९ ॥ विविध भोगका आश्रयस्वरूप विश्वकी सृष्टि करता है हे राजन् ! वह ईश्वरभी ब्रह्मरूपिणी मेरी मायाशक्तिसे प्रेरित होकरही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करता है क्योंकि मैं ब्रह्मरूपिणी हूं वह मुझमें ही रज्जुकल्पित सर्पके समान कल्पित होरहाहै अतएव उनकोभी मेरी शक्तिके आधीन जानना चाहिये ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

देवीने कहा हे गिरिराज ! चराचरयुक्त यह सम्पूर्ण जगत् मेरीही मायाशक्तिद्वारा रचित होता है वह माया मुझमेंही कल्पित होती है किन्तु वास्तवमें वह माया मुझसे पृथक् नहीं है अतएव एकमात्र मैं ही चिद्वस्तु हूं मेरे अतिरिक्त चिद्वस्तु अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहारदृष्टिसे वह माया विद्यादि स्वतन्त्र नामसे विख्यात होती है किन्तु तत्व अथवा ब्रह्मदृष्टिसे मायाकी विद्यमानता नहीं है केवल एकमात्र ब्रह्मही विद्यमान रहता है ॥ २ ॥ मैंही वह चिद्ब्रह्मरूपिणी अविद्या कर्म

और अनेकप्रकार संस्कारयुक्त कूटस्थ ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके उसके भीतर चिदाभासरूपसे प्राणवायु आगे करके प्रवेश करती हूं ॥ ३ ॥ हे गिरिवर! इसप्रकार मेरे प्राणस्वीकारपूर्वक प्रवेशनकरनेपर लोकान्तरगमन जन्म और मरणादि व्यवहार किसप्रकार सिद्ध होसक्ते हैं ? जिसप्रकार एकमात्र व्यापक महाकाश उपाधि भेदसे घटाकाश और मठाकाश इत्यादि भिन्न भिन्न नामसे विख्यात होतेहैं इसीप्रकार मैं अनेक स्थलमें प्राणस्वीकार करके अविद्या और अन्तःकरणके प्रभेदसे हेतु भिन्न भिन्न होती हूं अतएव उससेही अनेकप्रकार भिन्नभिन्न जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ जिसप्रकार सूर्य स्वीय किरणसंयोगसे पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु प्रदीपितकरके भी दूषित नहीं होता इसीप्रकार मैं भी उत्कृष्ट और निकृष्ट सम्पूर्ण वस्तुके अन्तःप्रवेश हेतु दोषलिप्त नहीं होती ॥ ५ ॥ मढ़बुद्धि अज्ञानद्वारा बुद्ध्यादिनिष्ठ कर्तृत्व आत्मरूपिणी मुझमें आरोपित करके आत्माकोही कर्ता कहते हैं किन्तु बुद्धिमान् पंडितगण उसको स्वीकार नहीं करते फलतः मैं जीवके भीतर कर्त्रीरूपसे न रहकर साक्षीरूपसे स्थिति करती हूं ॥ ६ ॥ हे अचलेन्द्र ! अविद्या और विद्याके भेदहेतु जीवबहुत्व और ईश्वरबहुत्व प्रतिपादित होता है फलतः मायाद्वारा ही मनुष्य पशु इत्यादि जीवभेद और ब्रह्मा, विष्णु इत्यादिमें ईश्वरभेद होता है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार महाकाश घटावच्छिन्न होनेपर महाकाश और घटाकाश ऐसा विभाग कल्पित होता है इसीप्रकार व्यापक परमात्मा जीवावच्छिन्न होकर परमात्मा और जीवात्माका इसप्रकार भेद कल्पित होता है ॥ ८ ॥ जिसप्रकार जीवका बहुत्व मायाद्वारा कल्पित होता है स्वभावसे नहीं होता इसीप्रकार ईश्वरबहुत्वभी स्वभावसे नहीं होता मायाद्वाराही कल्पित होता है ॥ ९ ॥ हे धरणीधर ! देह इन्द्रिय और मन इत्यादिके भेदसे अविद्या ही जीवके भेदका हेतु है अन्य कुछ नहीं है ॥ १० ॥ और जो तीनों गुणकी वासनाभेदसे अर्थात् सात्विक राजसिक और तामसिक वासनाभेदसे मायाकीभी भिन्नता उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥ वह विभिन्नमायाही ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ईश्वरके भेदका कारण है नहीं तो और कुछ नहीं है हे धराधरेन्द्र ! यह सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोतभावसे मुझमें ही स्थित रहता है ॥ १२ ॥ अतएव मैं ही कारणदेहाभिमानी ईश्वर लिंगेदेहाभिमानी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और स्थूल देहाभिमानी विराट् हूं मैं ही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और मैं ही ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्ति हूं ॥ १३ ॥ मैं ही सूर्य मैंही चन्द्रमा मैं ही तारका और मैं ही पशु पक्षी चाण्डाल और तस्कर हूं ॥ १४ ॥ मैंही

क्रूरकर्मा व्याध और सत्कर्मा महाजन तथा मैंही स्त्री पुरुष और नपुंसक हूं इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ हे गिरिवर ! जिस किसी स्थानमें जो कोई वस्तु दिखाई देती अथवा सुनाई देती हैं मैं उस सम्पूर्ण वस्तुके भीतर और बाहर व्याप्त होकर सर्वदा स्थित रहती हूं ॥ १६ ॥ मेरेबिना चराचरकी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है यदि कुछ है तो वह वन्ध्याके पुत्रकी समान निरर्थक है ॥ १७ ॥ जिसप्रकार एकमात्र रज्जु सर्प और मालादिरूपसे प्रतिभात होती है इसप्रकार एकमात्र मैंही ब्रह्मस्वरूपिणी मैंही ईश्वरादि रूपसे प्रतिभात होती हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि यह कल्पित जगत् अधिष्ठानसत्ताके अतिरिक्त हेतु प्रतिभात नहीं होता यह मेरी सत्ताद्वाराही सत्तावान् होताहै नहीं तो अन्य किसीप्रकार सम्भव नहींहोसक्ता ॥ १९ ॥ हिमालयने कहा हेदेवि ! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा हो तो आपकी समष्टयात्मक अर्थात् सर्वसमष्टीरूप सर्वाभिमानी विराड्मूर्ति देखनेकी इच्छा करता हूं आप अनुग्रहकरके वह मुझको दिखाइये ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! गिरिवरके यह वचन सुनकर विष्णु इत्यादि सम्पूर्ण देवताओंने प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त मानसहित उनके उस वचनका अनुमोदन किया ॥ २१ ॥ अनन्तर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करनेवाली भक्तोंकी कामधेनु और कल्याणरूपिणी देवी भुवनेश्वरीने अपना रूप देखनेमें देवताओंको उत्सुक जानकर अपना विराड्रूप दिखाया ॥ २२ ॥ वह महादेवीके उस विराट्रूपको देखनेलगे. सम्पूर्ण उर्द्ध्वस्थित सत्यलोक उस विराट्रूपिणीका मस्तक चन्द्रमा और सूर्य उसकी दोनों आँखें ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण दिशा श्रोत्र (कान) सम्पूर्ण वेद वाक्य, वायु उसका प्राण, विश्व उसका हृदय, पृथ्वी जघनस्थल, ॥ २४ ॥ नभस्थल अर्थात् भुवर्लोक नाभिसरोवर ज्योतिष्कमण्डल ऊरुस्थल महर्लोक ग्रीवा जनलोक मुखमण्डल ॥ २५ ॥ सत्यलोकके अधःस्थित तपोलोक उसका ललाटफलक इन्द्रादि देवतायुक्त स्वर्गलोक उसकी बाहु, शब्द उस महेश्वरीका श्रवणेन्द्रिय ॥ २६ ॥ दोनों अश्विनीकुमार उसके नासापुट, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, मुखके भीतर अग्नि, दिन और रात उसके दोनों पक्षरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ २७ ॥ और उनकी दोनों भौंहें चतुर्मुख ब्रह्माजीका स्थान, जल उसका तालु, रस उसकी जिह्वा, यमराज उनकी दाढे ॥ २८ ॥ स्नेह विलास दाँत, माया उसका हास्य, ब्रह्माण्डसृष्टि उसका कटाक्ष, व्रीडा उर्द्ध्व ओष्ठ ॥ २९ ॥ लोभ अधर और अधर्म उसका पृष्ठभाग, जो जगतीतलमें सृष्टिकर्ता प्रजापति हैं वह उसका मेढ्र ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण समुद्र

कुक्षि समस्त पर्वत उस महेश्वरीके अस्थिस्वरूप, समस्त नदियें नाडी और सम्पूर्ण वृक्ष उसके केशरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! कौमार यौवन और जरा उसकी उत्तम गति मेघसमूह उसका केशजाल दोनों सन्ध्या उन परम प्रभुकी दोनों वस्त्रस्वरूप ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा उस जगदम्बिकाका मन हरि उसकी विज्ञान शक्ति और रुद्र उसके अन्तःकरण ॥ ३३ ॥ अश्वादि सम्पूर्ण जीव उसको नितम्ब देश और अतलादि सम्पूर्ण महर्लोक उसके कटिदेशसे चरणकमलोंतक स्थिति करते थे॥ ३४॥ देवतागण आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे जगदम्बिकाकी इसप्रकार मूर्त्ति देखने लगे उनकी उस मूर्त्तिसे सहस्र सहस्र ज्वाला माला निकलने लगीं जिह्वाद्वारा सम्पूर्ण जगत्‌का आस्वादन करने लगी ॥ ३५ ॥ दोनों दशनपंक्तियोंमें कटकटा शब्द होनेलगा सम्पूर्ण अक्षियोंसे अग्नि उद्गार आरम्भ हुआ हाथमें अनेक प्रकारके आयुध ब्राह्मण और क्षत्रिय उस घोरदर्शन वीरपुरुषके ओदनस्वरूप ॥ ३६ ॥ उनकी उस मूर्तिमें अनेक मस्तक अनेक नेत्र और अनेक चरण थे जिनकी सीमा नहीं उस मूर्तिके देखनेसे बोध होता था कि एक वारही करोड सूर्य उदय हुए हैं मानों अनेक विद्युन्माला एकत्र प्रकाशित होरहीं हैं ॥ ३७ ॥ महादेवीके वह महाभयंकर नेत्रभी मनको त्रासउत्पन्न करते थे इस प्रकार महाघोर विराट्‌मूर्ति देख सम्पूर्ण देवतालोग भीत होकर हाहाकार करनेलगे ॥ ३८ ॥ और उनका हृदय काँपनेलगा वह अत्यन्त मूर्च्छासे आक्रान्त होगये " यही हमारी पालनकरनेवाली जगदम्बिका है " यह ज्ञान एकवारही दूर होगया ॥ ३९ ॥ उससमय उन भुवनेश्वरीके चारोंओर जो सम्पूर्ण वेद स्थिति करतेथे उन्होंने मूर्च्छासे उठायकर देवताओंको समझाया ॥ ४० ॥ अनन्तर वह निर्जरगण वह अत्युत्तम श्रुति प्राप्तकर धैर्यअवलम्बनपूर्वक अन्तर्जनित बाष्पसे रुद्धकण्ठ हो ॥ ४१ ॥ प्रेमविगलित अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गदवचनद्वारा जगदम्बिकाका स्तव करनेलगे देवताओंने कहा हे मातः ! हम अत्यन्त दीन और आपसेही हम उत्पन्न हुए हैं आप हमारा अपराध क्षमाकीजिये ॥ ४२ ॥ और हमारे प्रति कोप त्यागकीजिये, हम आपके इस रूपको देखनेसे अत्यन्त भीत हुए हैं हे देवि ! पामर अमरगण आपकी क्या स्तुति करें ? ॥ ४३ ॥ आप स्वयं जब कि अपने पराक्रमकी सीमा करनेमें असमर्थ हैं तब हम आपके पीछे जन्म ग्रहण करके किसप्रकार उसको जानसक्ते हैं॥ ४४॥ हे प्रणवात्मिके भुवनेश्वरि ! हम आपको नमस्कार करतेहैं हेदेवि ! सम्पूर्ण वेदान्तशास्त्रमें आपको प्रतिपादित किया है हम आपको

उसी ह्रींकारमूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ४५॥ जिनसे अग्नि सूर्य चन्द्रमा और जिनसे सम्पूर्ण औषधियें उत्पन्न हुई हैं उन्ही सर्वात्मरूपिणीको नमस्कार है ॥ ४६॥ जिनसे सम्पूर्ण देवतागण साध्यगण पशुगण पक्षिगण और मनुष्यगण उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं सर्वात्मरूपिणी देवीके विराट्रूपको नमस्कार करते हैं॥ ४७॥ जिनसे प्राण अपान व्रीहि यव तपस्या श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण हितकर्तव्यतारूप विधि उत्पन्न हुई है हम उन्हीं सर्वात्मिका महामायाकी महामूर्तिको नमस्कार करते हैं॥ ४८॥ जिनसे सप्त प्राण सप्त दीप्ति सप्त समाधि सप्त होम और सप्त लोक उत्पन्न हुएहैं हम उन्हीं सर्वस्वरूपिणीको नमस्कार करतेहैं॥ ४९॥ जिनसे सम्पूर्ण समुद्र सम्पूर्ण पर्वत समस्त नदी सम्पूर्ण औषधि और समस्त रस उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं भुवनेश्वरीकी विराट्मूर्तिको नमस्कार करतेहैं ॥५०॥ जिनसे यज्ञ यूप और दक्षिणा एवं ऋक् यजु और सामवेद उत्पन्न हुए हैं हम महामायाकी उस अखिल विश्वात्मक विराट्रूपको नमस्कार करते हैं॥ ५१॥ हेमातः महामाये! आपकें पुरोभागमें नमस्कार आपके पृष्ठ भागमें नमस्कार आपके दोनों पार्श्वमें नमस्कार आपके ऊर्द्ध्वभागमें नमस्कार आपके अधोभागमें नमस्कार और आपके चारों ओर वारंवार नमस्कार करते हैं॥ ५२॥ हे देवि! आप अपने इस अलौकिक रूपको दूर करके अपना परम सुन्दर मनोहर रूप हमको दिखाईये॥ ५३॥ व्यासजीने कहा हे राजन्! करुणाकी अर्णवरूपिणी जगदम्बिकाने सुरगणोंको भीत देख अपना घोर विराट्रूप दूर करके परमसुन्दर भुवनमोहन पूर्वरूप दिखाया ॥ ५४ ॥ उनका सम्पूर्ण शरीर कोमल होगया उन्होंने एक हस्तमें पाश और एक हस्तमें अङ्कुशास्त्र धारण किया अपर दोनों हातोंमेंसे एक हस्तमें वरदान और अन्य हस्त अभयदान भङ्गिमामें उद्यत उनके नेत्र देखनेसे बोध होता था कि मानो उनके एकवारही करुणारससे परिपूर्ण मुखकमलमें कुछेक हास्य विराजमान है ॥ ५५॥ देवतागण जगदम्बिकाकी इसप्रकार मूर्ति देखकर भयरहित हो शान्तचित्तसे हर्ष और गद्गदशब्दपूर्वक प्रणाम करनेलगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

श्रीदेवी बोली कहां तो तुम मंदभाग्य और कहां यह मेरा अद्भुत रूप तौभी भक्तिवत्सलतासे तुमको मैने यह रूप दिखाया है ॥ १ ॥ वेदाध्ययन योग दान तप यज्ञसे

यह मेरा रूप नहीं दीखता इसमें केवल मेरी कृपाही कारण है ॥ २ ॥ अब उसी प्रकृत विषयको श्रवणकरो जो परमात्मा उपाधियोगसे जीवताको प्राप्त और कर्तृआदिपदसे व्यवहार कियाजाता है ॥ ३ ॥ धर्म अधर्मके कारण अनेकप्रकारकी क्रिया करता है और यह जीव अनेकयोनियोंको प्राप्त होकर सुखदुःख भोगता है ॥ ४ ॥ फिर उन्हीं संस्कारोंके वशसे अनेकप्रकारके कर्मोंमें रत होता है अनेक देहोंसे युक्त हो अनेक सुखदुःख पाताहै ॥ ५ ॥ घडीयंत्रकी समान यह सदा विचरताही रहता है इसको कभी विश्राम नहीं मिलता आजतक अनेकसृष्टि प्रलय हुई पर इसका विराम न हुआ इसका मूल अज्ञान है इस अज्ञानसे इच्छा और उससे क्रिया होती है ॥ ६ ॥ इससे अज्ञान नाशके निमित्त क्रिया करनी चाहिये यही जन्मकी सफलता है ॥ ७ ॥ जो अज्ञाननाश कियाजाय "यो ह्यविदित्वात्मानमस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः" इति श्रुतेः। पुरुषार्थकी समाप्ति जीवन्मुक्तकी दशाकी प्राप्ति और अज्ञाननाशनमें एक विद्याही समर्थ है ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानसे उत्पन्न हुए कर्मके नाशमें समर्थ नहीं है कारण कि इन दोनोंका परस्पर विरोध नहीं है कर्मद्वारा अज्ञानके नाशकी आशा न करनी चाहिये ॥ ९ ॥ कारण कि यह अनर्थके देनेवाले कर्म वारंवार प्रगट होते हैं फिर राग और फिर दोष इससे महाअनर्थ होता है ॥ १० ॥ इसकारण सब प्रयत्नसे मनुष्यको ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इस श्रुतिसे कर्मकोभी सदा करना आवश्यक कहा है ॥ ११ ॥ तथा 'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्' अर्थात् ज्ञानसे ही मुक्ति होतीहै इनका समुच्चय इसप्रकार है कि ज्ञानके होनेमें कर्म सदा सहायक है ॥ १२ ॥ इसप्रकार इसविषयमें कोई कहते हैं इस भांतिसे विरोध सम्भव नहीं होता कारण कि ज्ञानसे हृदयकी गांठ खुलती है, और हृदयकी ग्रंथिमें कर्म स्थित है जहां ज्ञानके आगे कर्मकी भावना हो वहां ज्ञानकर्मका समुच्चय कहनाचाहिये ॥ १३ ॥ इसकारण उन ज्ञान और कर्मका तम और प्रकाशकी समान एकसाथ विरोध नहीं संभव होसक्ता, इसकारण यदि ज्ञान उत्पन्न न हो तो यावज्जीव कर्मानुष्ठान करतारहे ॥ १४ ॥ हे महामते! इस कारण जितने वैदिक कर्म हैं, वह सब चित्तशुद्धिके निमित्त हैं उनको यत्नपूर्वक करनाचाहिये, चित्तशुद्धि होनेसे ज्ञान प्राप्त होकर ज्ञानी होगा ॥ १५ ॥ शम–अन्तर इन्द्रियका निग्रह, दम बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह तितिक्षा शीत उष्ण आदिका सहना वैराग्य दोनों लोकके फलमें विराग और अन्तःकरणकी शुद्धि जबतक यह प्राप्त न हो तबतक कर्म करता रहै

फिर कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ ज्ञान होनेपर सब कुछ त्याग आत्मवान् गुरुका आश्रय करै वेदपाठी ब्रह्ममें निष्ठावाले वेदवेदांगके ज्ञातासे छल रहित भक्तिपूर्वक ॥ १७ ॥ सावधान हो नित्य वेदांत श्रवण करै और 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका नित्यही अर्थ विचारता रहै ॥ १८ ॥ "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्य जीव और ईशकी एकताबोधक हैं इनकी एकता जानकर यह निर्भय होकर मेरा रूप होजाता है ॥ १९ ॥ पहले पदार्थका ज्ञान फिर वाक्यार्थका ज्ञान करै हे पर्वतराज 'तत्' पदका अर्थ षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न मैं हूं ॥ २० ॥ और 'त्वं' पदका वाच्यार्थ निःसन्देह जीव है, 'असि' पदसे दोनो जीव ईश्वरकी एकता ज्ञात होती है अर्थात् वही तू है ॥ २१ ॥ यदि कहो कि अत्यन्त विरुद्ध धर्मवाले जीवेश्वरकी एकता किसप्रकार होसक्ती है तो भागलक्षणासे कहते हैं, आशय यह कि, जब वाच्यार्थ विरुद्ध होनेसे दोनोंकी एकता न घटे तो उसमें लक्षणा करनी चाहिये जीवके असर्वज्ञत्व और परिच्छिन्नत्व आदि निकृष्ट धर्म हैं ईश्वरकी सर्वज्ञता व्यापकताआदि उत्कृष्ट धर्म हैं तब इनका अभेद कैसे हो इसपर श्रुतिसम्मत 'तत्, त्वं' पदकी लक्षणा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ किस अर्थमें लक्षणा करनी चाहिये तब कहते हैं चिन्मात्रमें लक्षणा होती है, सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य ईश्वर है असर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य जीव है इनमें दोनों धर्म छोड़कर चिन्मात्र भागत्यागलक्षणासे ग्रहण करना, इसप्रकार लक्षणासे दोनोंकी एकता होगी अपने अभेदसे इनकी एकताका ज्ञान होनेसे अद्वय होगा यह इसका महाफल है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है इस वाक्यसे तत्कालविशिष्ट देवदत्तका इसकालविशिष्ट देवदत्तसे भेद होनेपरभी वैशिष्टचरूप दोनों धर्मके त्यागसे अविरुद्ध व्यक्तिको भागत्यागलक्षणासे ग्रहणकर अभेद किया जाता है इसीकारण लक्षणा ग्रहण की है इस अनुभवसे स्थूलादिभेदरहित हो यह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसेही यह स्थूलदेह प्रगट हुआ है, यह भोगका स्थान जरा व्याधि तथा सब कर्मोंसे युक्त है ॥ २५ ॥ यह मिथ्या भी है परन्तु मायासे सत्यसा दीखता है हे पर्वतराज! यह मेरे आत्माकी स्थूलउपाधि है ॥ २६ ॥ ज्ञानकर्मेन्द्रियसे युक्त प्राणपंचकसे संयुक्त तथा मनबुद्धिसे युक्त देह सूक्ष्मउपाधि है ॥ २७ ॥ अपंचीकृत भूतोंसे प्रगट यह आत्माका सूक्ष्म देह है, यह अन्तःकरणकी सुखदुःखादिअवबोधक दूसरी उपाधि है ॥ २८ ॥ हे नगेश्वर! अनादि अनि-

वीच्य अज्ञानयुक्त यह कारणशरीर तीसरा है ॥ २९ ॥ इन स्थूलसूक्ष्मकारण उपाधियोंके लीन होनेमें केवल आत्मा अवशेष रहता है इन तीनों देहोंमें अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय यह पांच कोश सदा अन्तर स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ इन पंचकोशके त्यागमें 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जो नेति २ इत्यादि वाक्योंसे मेरा रूप कहा जाता है ॥ ३१ ॥ यह ब्रह्मरूप न कभी उत्पन्न होता न मरता, न कभी होनेवाला और न कभी हुआ है यह अज नित्य शाश्वत पुरातन छहों विकारोंसे रहित है शरीरके हन्यमान होनेपरभी मरता नहीं हन्यमान नहीं होता ॥ ३२ ॥ जो मारनेवाला मारा ऐसा जान्ता है हत हुआ अपनेको हत मानता है यह दोनों ही इसको नहीं जानते कारण कि न यह मरता न माराजाता है ॥ ३३ ॥ यह अणुसे अणु और महान्से महान् आत्मा होकरभी इस प्राणिके हृदयरूपी गुहा वा बुद्धिमें स्थित है इस आत्माकी महिमाको चित्तकी निर्मलता संकल्पविकल्परहित होनेसे जान्ता है तब वीतशोक होता है ॥ ॥ ३४ ॥ आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि, मन लगाम, ॥ ३५ ॥ इन्द्रिय घोड़े हैं यह विषयरूपी मार्गमें निरन्तर गमन करते हैं, आत्मा चिदाभास, इन्द्रिय मन यह तीन कूटस्थ मिलित होकर भोक्ता कहा जाता है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष अविद्वान् अर्थात् अविवेकी होता है अस्वाधीन अशुचि होता है वह तत्पदको प्राप्त न होकर संसारमें पड़ता है ॥ ३७ ॥ और जो विज्ञानवान् स्वाधीन मन सदा पवित्र होता है वह उस पदको प्राप्त होता है जहांसे फिर आना नहीं होता ॥ ३८ ॥ जिसका विज्ञान सारथि मनकी लगाम रोकेहुए है वह इस संसारके पार हो मेरे परमपदको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इसप्रकार श्रुति बुद्धिद्वारा आत्मासे ही आत्माका निश्चय कर विक्षेपादिरहित हो साक्षात्कार होनेसे चित्तकी एकाग्र वृत्तिसे आत्मरूप मेरा ध्यान करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार निदिध्यासन अभ्याससे जब चित्तमें समाधिकी योग्यता होजाय तब समाधिसे पहले अपने शरीरमें प्रणवसंज्ञक मायाबीजमंत्रके तीन अक्षरोंका ध्यान करे मंत्रवाच्य मायाबीजमंत्रार्थके समष्टिव्यष्टिके ध्यानार्थ है ॥ ४१ ॥ हकार स्थूलदेह रकार सूक्ष्मदेह ईकार कारणदेहरूप है और मैं जो तुरीयरूप हूं सोई ह्रींकार है ॥ ४२ ॥ जैसे व्यष्टिदेहमें भावना की है इसीप्रकार समष्टिदेहमें क्रमसे तीनों बीजोंको जानकर बुद्धिमान् समष्टिव्यष्टि पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता ध्यान करे ॥ ४३ ॥ इस

प्रकार आदरपूर्वक समाधिसे पहले ध्यानकर नेत्र मूंद मुझ जगदीश्वरीका ध्यान करै ॥ ४४ ॥ नासिकाके आभ्यन्तर फिरनेवाले प्राण अपानको समानकर विषयादिकी आकांक्षासे निवृत्त हुआ दोष और मत्सरतासे रहित ॥ ४५ ॥ छलरहित भक्तिसे युक्त हुआ गुह्य वा शब्दरहित एकान्त स्थानमें वैश्वानरात्मक हकारको रकारमें लीन करै अर्थात् हकारवाच्य स्थूल देहको रकारवाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करै ॥ ४६ ॥ रकारवाच्य तैजस अर्थात् सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारण देहमें लय करै ईकारवाच्य कारणदेहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लय करै ॥ ॥ ४७ ॥ जब वाच्य और वाचकतासे हीनं, द्वैतभावसे वर्जित होजाय तब चैतन्य अग्नि दीपशिखान्तरमें अखंड सच्चिदानंदकी भावना करै ॥ ४८ ॥ हे राजन्! इस प्रकार नरोत्तम ध्यानमें मेरा साक्षात्कार करके मेराही रूप होजाता है कारण कि दोनोंकी एकता सिद्ध है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार इस योगयुक्तिसे परात्पर मुझ आत्माको देखते ही अपने कार्यसहित अज्ञान उसीसमय नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५. ॥

हिमालयने कहा हे महेश्वरि! जिस योगद्वारा ब्रह्मलाभ होता है उस योगका विषय अंगोंसहित वर्णन करो जिसका अनुष्ठान कर मैं तत्वदर्शनका अधिकारी होऊं॥ १॥ श्रीदेवी बोली आकाश भूमि रसातलादिस्थानोंमें योग नहीं है जीव और आत्माकी अभेदविषयक चित्तवृत्तिको ही योगविशारद योग कहते हैं ॥ २ ॥ हे पापरहित! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह छः योगके शत्रु हैं जो इसमें विघ्न कियाकरते हैं॥ ३ ॥ इसकारण योगियोंको आगे लिखे योगके अंगोंसे योगशत्रुओंको विनाश करके योग प्राप्त करना चाहिये यम, नियम,आसन,प्राणायाम ॥ ४ ॥ प्रत्याहार, धारण,ध्यान और समाधि यह आठ अंग योगियोंको योगमें सहायक हैं॥ ५॥ किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, सर्वनाशमें भी धीरता मितभोजन दो भाग अन्नसे पूर्ण करै एक भाग जलसे चौथा भाग वायुके गमनागमनको रक्खे यह अल्पाहार है तथा बाह्य आभ्यन्तरकी शुद्धि करै यह दश यम हैं ॥ ६ ॥ तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, [वेद, देव, द्विज और गुरुमें विश्वास] दान, देवपूजा, सिद्धान्त अर्थात् वेदान्तवाक्यका श्रवण, अकार्यकरनेमें

लज्जा मति (सत्कर्म और सच्छास्त्रविषयक ज्ञान) जप और नित्यहोमादि ॥ ७ ॥ हे पर्वतनायक ! यह मैं ने दश नियम कहे हैं पद्मासन, स्वस्तिक, भद्र, वज्रासन ॥ ८ ॥ और वीरासन यह क्रमसे पांच आसन कहे हैं दोनों पैरोंके तलुए दोनों जंघाओंपर रखकर ॥ ९ ॥ हाथोंको पीठकी ओरसे ले आगे दहिने हाथसे दहिने चरणका बायेंसे बायें चरणका अँगूठा पकडै यह योगियोंको प्रसन्नकरनेवाला पद्मासन कहा है ॥ १० ॥ जानु और ऊरुओंके अन्तर दोनों पैरके तलुए भलीभांति स्थापि-तकर सरलभावसे सुखपूर्वक बैठनेको स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥ ११ ॥ अंडको-शकी शिराके नीचे सीमनके दोनों पार्श्वमें दोनों गुल्फोंको भली प्रकार स्थापित कर दोनों हाथोंसे अंडकोशके अधोभागमें दोनों पैरोंका पार्ष्णिभाग हाथोंसे दृढभावसे बांधकर ॥ १२ ॥ बैठनेका नाम योगियोंने भद्रासन कहा है योगी इसका विशेष आदर करते हैं दोनों चरण क्रमसे दोनों ऊरुओंपर रखकर दोनों जानुओंके निम्नभा-गमें अंगुली रखकर ॥ १३ ॥ दोनों हाथ स्थापनकर बैठनेको वज्रासन कहते हैं योगीजन एक ऊरुके नीचे एक चरण दूसरी ऊरुके नीचे दूसरा पद स्थापनकर ॥ १४ ॥ सरल कायासे जो स्थिति करते हैं इसको वीरासन कहते हैं योगका ज्ञाता प्रथम सोलह वार प्रणव उच्चारण करके इडा अर्थात् बाईं नासिकाद्वारा गुह्य वायुको आकर्षण करै ॥ १५ ॥ फिर जितनी देरमें चौंसठ वार प्रणव उच्चारण हो इतने समयतक यह खेंची हुई वायु धारण करके पूरक करै फिर ३२ वार प्रणवो-च्चारणकालमें शनैः २ सुषुम्नामध्यगत वायुको ॥ १६ ॥ दक्षिणनासापुटद्वारा रेचन करै योगशास्त्रज्ञाता पंडितोंने इसका नाम प्राणायाम कहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार वारंवार बाह्य वायु ग्रहणकरके पूरक कुंभक और रेचकका अभ्यास करै और क्रमानुसार प्रणवोच्चारणकी संख्या बढावे यह प्राणायाम पहले १२ वार फिर १६ वार और फिर क्रमसे और भी अधिक करै ॥ १८ ॥ सगर्भ और अगर्भके भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है इष्ट मंत्रके जप ध्यानादि पूर्वक जो प्राणायाम किया जाता है वह सगर्भ है और जो प्राणायाम इष्ट मंत्रके जप ध्यानादिविना होता है वह विगर्भ प्राणायाम है ॥ १९ ॥ इस प्रकार क्रमसे प्राणायामका अभ्यास करते २ देहमें पसीना आनेसे वह प्राणायाम अधम, कम्प उत्पन्न होनेसे मध्यम और जिस प्राणायाममें साधक भूमि त्यागकर ऊंचा उठता है वह उत्तम प्राणायाम है॥ २० ॥ जबतक उत्तम प्राणायामका फल लाभ न हो तबतक अभ्यास करता रहै इन्द्रिय

सदाही अपने २ विषयोंमें अबाधित भावसे विचरण करती हैं ॥ २१ ॥ उनको विषयोंसे बलपूर्वक रोकनेहीका नाम प्रत्याहार है अंगूठा, गुल्फ, जानु, ऊरु, मूलाधार, लिंग, नाभि ॥ २२ ॥ हृदय, ग्रीवा, कंठ, लम्बिका, नासिका, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्धा (ब्रह्मरंध्र) इन द्वादशान्त स्थानमें विधिपूर्वक ॥ २३ ॥ प्राणवायुको रोक रखनेका नाम धारणा है प्रथम ध्यानसे अन्तःकरणको चैतन्यवर्ती अर्थात् आत्मसंस्थ करके ॥ २४ ॥ उसमें अभीष्ट देवताके चिन्तनका नाम ध्यान है जीवात्मा और परमात्मा की एकता भावना संप्रज्ञात समाधिको ॥ २५ ॥ मुनियोंने समाधि कहा है यह अष्टांगलक्षणवाला योग तुमसे वर्णन किया अब मंत्रोंका सिद्धिदायक अति उत्कृष्ट योग तुमसे वर्णन करती हूं ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज! पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह शरीर विश्व वा ब्रह्माण्ड कहा जाता है यह पंचभूतात्मक चन्द्र सूर्य और अग्निसे युक्त होकर जीव ब्रह्मके ऐक्यज्ञानदायक होता है ॥ २७ ॥ इस शरीरमें साढेतीन करोड नाडी हैं उनमें दश मुख्य हैं और दशमें भी तीन अतिशय प्रधान हैं ॥ २८ ॥ इनमें भी एक सुषुम्ना नाड़ी प्रधान है चन्द्र सूर्य और अग्निरूपिणी इस नाड़ीने मेरुदण्डके मध्यभागमें स्थित होकर मूलधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गमन किया है इसके वामभागमें शुभ्रवर्ण चन्द्र रूपिणी इडा है ॥ ॥ २९ ॥ यह शक्तिरूपा अमृतमयी है और दक्षिणभागमें पुरुषरूपिणी सूर्य स्वरूपा पिंगला नाड़ी स्थित है ॥ ३० ॥ और वह्निप्रधानासुषुम्नानाड़ी सब तेजोमयी है इसके मध्यमें स्थित चित्ररेखानामक नाडीके भीतर इच्छा, ज्ञान और क्रिया त्मक ॥ ३१ ॥ कोटिसूर्यके समान प्रभावशाली स्वयंभूलिंग प्रतिष्ठित है उसके ऊपर भागमें हरात्मा विन्दुनाद अर्थात् हकार, रेफ, ईकार विन्दुनादात्मक मायाबीज स्थित है ॥ ३२ ॥ उसके ऊपरीभागमें दीपशिखाके समान लाल वर्ण देवीरूपिणी कुंडलिनी शक्ति विराजमान है हे नगेश्वर! यह मुझसे अभिन्न है॥ ३३ ॥ इसके बहिर्भागमें पीतवर्ण सुवर्णके समान कान्तिवाले कमलकी चिन्ता करै उससे चार दलोंमें श, ष, स, ह, यह चार अक्षर ध्यान करै ॥ ३४ ॥ इसके ऊपर षट्कोण कमलका ध्यान करै जो अग्निके समान छः दलोंसे युक्त हीरेकेसी कान्तिवाला है इसके छहौं दल, ब, भ, म, य, र, ल, इन अक्षरोंसे सम्पन्न हैं स्व शब्दसे परलिंग जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह षट्कोण मूलके आधारवाला है इसीसे इसको मूलाधार कहते हैं स्वशब्दसे पर- लिंग और स्वाधिष्ठान जानना चाहिये यही स्वाधिष्ठान पद्म है ॥ ३६ ॥ इसके ऊपर

नाभिस्थानमें विद्युत् छटा और मेघके समान कान्तिमान् अतितेजयुक्त महा प्रभा-वाला मणिपूर ॥ ३७ ॥ मणिवत्प्रभावाला होनेसे मणिपद्म कहाता है उसमें दश-दल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, यह अक्षरयुक्त है ॥ ३८ ॥ यह पद्म विष्णुसे अधिष्ठित होनेसे इसके ध्यानसे विष्णुका साक्षात्कार होता है इसके ऊर्ध्व भागमें बालसूर्यके समान प्रभायुक्त अनाहत पद्म है ॥ ३९ ॥ यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन बारहवर्णों युक्त बारहदल सम्पन्न है इसके मध्यमें अयुत १००००सूर्यके समान प्रभा सम्पन्न बाणालिंग विराजमान है॥ ४०॥ किसीप्रकारकी ताडनाके विनाही इससे शब्दब्रह्मकी उत्पत्ति होती है इसीसे मुनिजन इसको अना-हत पद्म कहते हैं ॥ ४१ ॥ यह पद्म आनंदका धाम है इसमें रुद्ररूपी पुरुष विराजते हैं इसके ऊपर भुविशुद्धनामक षोडश दल कमल ॥ ४२ ॥ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन सोलह स्वरोंसे युक्त धूम्रवर्ण महाकान्तिमान् है परमात्माके अवलोकनसे इसमें जीव शुद्ध होता है अर्थात् दोनोंका अभेद साक्षात्कार होनेसे जीव विशुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ इसीकारण इसको विशुद्ध पद्म कहते हैं यह महाअद्भुत पद्म आकाशनामसे अभिहित है इसके ऊपर भ्रूमध्यमें आत्माका परम अधिष्ठान आज्ञाचक्र है ॥ ४४॥ यह ह और क्ष दो-दलसे युक्त मनोहर है इसमें चित् स्थित होनेसे सब पदार्थोंका साक्षात्कार हो आता है, भूत भविष्य वर्तमान् वस्तुओंमें यह तुम्हारा कर्त्तव्य है इसप्रकार परमेश्वरकी आज्ञाका संक्रमण होता है इसीसे इसको आज्ञापद्म कहते हैं ॥ ४५॥ इसके ऊर्ध्वमें कलासचक्र और उसके ऊर्ध्वमें रोधिनीचक्र है हे सुव्रत इसप्रकार आपके निकट आधारचक्रोंका वर्णन किया ॥ ४६ ॥ योगियोंका कथन है उसके ऊर्ध्वमें सह स्रारचक्र है यह बिन्दु अर्थात् परमात्माका स्थान है यह आपसे सम्पूर्ण योगमार्ग वर्णन किया ॥ ४७ ॥ यह जानकर जो करना चाहिये सोई कहती हूं, पहले पूरक प्राणायाम द्वारा आधारचक्रमें मन संयुक्त करै, गुदा और मेढ्रके भीतर मूला-धारमें विराजमान कुंडलिनी शक्तिको मूलाधारमें प्राप्त वायुद्वारा आकुंचित करके प्रबोधित करै ॥ ४८ ॥ अनन्तर लिंगभेद क्रमसे अर्थात् पूर्वोक्त चक्रस्थित तेजो-मय स्वयंभू इत्यादि लिंगका भेदकर उस उस मार्गमें उस कुंडलिनी शक्तिको सहस्रार स्थानमें लावै फिर उस परमशक्तिको सहस्रारमें स्थित शंभुके सहित एकीभूत रूपसे चिन्तन करै ॥ ४९ ॥ अनन्तर शिवशक्तिके संगमसे लाक्षारसकेसमान जो अमृत

निर्गत होता है उसी आनंदस्वरूप अमृतसे योगसिद्धिकरी मायानामिनी कुंडलिनी शक्तिको तृप्त करै ॥ ५० ॥ और छहों चक्रोंमें स्थित देवसमूहोंको उस अमृत धाराद्वारा तृप्त करके पूर्वोक्त मार्गसे उस शक्तिको मूलाधार पद्ममें लावै ॥ ५१ ॥ जो प्रतिदिन इसप्रकार योगका अभ्यास करते हैं उनके सम्बन्धमें छिन्नादिदोष दूषित सब मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५२ ॥ और इसीसे जरा-मरणादि दुःखवाले संसार बंधनसे मुक्त होता है और मुझ जगन्मातामें जो सब गुण विद्यमान् हैं॥ ५३ ॥ ऐसे साधकको वह समस्त गुण प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है तात! यह तुमसे अति उत्तम वायुधारणयोग कथन किया॥ ५४ ॥ अब सावधान होकर चित्तधारणाख्ययोग सुनो दिक् काल और देशादिद्वारा अपरिच्छिन्न देवीमूर्तिमें चित्तको स्थिरकर सकनेसे ॥ ५५॥ तन्मय होनेसे शीघ्रही जीवब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है उस समय साधक ब्रह्ममय हो जाता है और यदि चित्त रज तम द्वारा मलीन हो तो शीघ्र योगसिद्धि नहीं होती॥ ५६ ॥ तब योगी अवयवयोगसे योनाभ्यास करै अर्थात् मेरे हस्तपादादि किसी मनोहर अंगमें॥ ५७॥ चित्तको लगाय एक एक स्थानको जय करता हुआ,चित्तकी शुद्धता होनेसे मेरे सब स्वरूपमें मनको स्थापन करै ॥ ५८॥ हे नगेन्द्र! जबतक मुझ ब्रह्मरूपिणीमें चित्तका लय न हो तबतक मंत्रयोग-परायण साधक जप और होमके द्वारा इष्टमंत्रसाधनका अभ्यास करै ॥ ५९ ॥ मंत्राभ्यास योगद्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है योगके विना मंत्र सिद्धि नहीं होती, और मंत्रके विना योगसिद्ध नहीं होता मंत्र और योग दोनोंका अभ्यास ही ब्रह्मज्ञा-नका कारण है ॥ ६० ॥ घरमें रक्खा हुआ अंधकारसे आच्छन्न घड़ा जिसप्रकार दीपकसे दिखाई देता है इसीप्रकार मायासे आवृत जीवात्माभी मंत्रद्वारा प्रकाशित होता है अर्थात् मंत्र मायाअंधकारको दूरकरके आत्माका स्वरूप प्रकाश कर देता है ॥ ६१ ॥ हे पर्वतराज! यह मैंने तुम्हारे समीप अंगके सहित सब योग विधिका वर्णन किया ॥ ६२ ॥ यह विद्या गुरुके निकट उपदेश प्राप्तकरकेही जानी जाती है अन्यथा कोटिशास्त्रद्वारा भी इसका लाभ नहीं होसक्ता है ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

श्रीदेवी बोलीं हे गिरिराज! योगीजन इस प्रकार योगयुक्त हो आसनमें बैठ छलरहित भक्तिसे मुझ ब्रह्मरूपिणीका ध्यान करै॥१॥अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करती हूं सुनो यह ब्रह्म आवि अर्थात् प्रकाशमान वस्तु अति समीपवर्ती और गुहाचर अर्थात् सर्व व्यापक होकर भी केवल बुद्धिरूप गुहामेंही इसकी प्राप्ति होती है यह योगादि साधन गम्य है इस ब्रह्मसेही आकाशादि समस्त पदार्थ कल्पित होते हैं इसमेंही पक्षी मनुष्य निमेषादिक्रियावान् सब पदार्थ स्थापित हैं ॥ २ ॥ हे देवताओ! मेरे इस ब्रह्मरूपको जानो जो माया और जगत् इन दोनोंसे श्रेष्ठ है लोकमें ज्ञानातीत और वरिष्ठ अर्थात् सम्पूर्ण बुद्धियोंको भी गम्य नहीं है जो सूर्यादितेजका भी प्रकाशक है इससे वह सूर्यादितेजसे भी अत्यन्त दीप्तिमान् और अणुसे भी अणु अर्थात् अति सूक्ष्म है जिसमें भूरादि लोक और उन लोकनिवासियोंकी स्थिति है ॥ ३ ॥ वह अक्षर अविनाशी पदार्थही ब्रह्म है यही प्राण, वाणी और मन स्वरूप है वही सत्य और अमृत स्वरूप है हे सौम्य! मनरूपी बाणसे उसको विद्धकरना चाहिये अर्थात् उसमें मन समाधान करै॥ ४ ॥ हे सौम्य! उसके विद्ध करनेका उपाय कहती हूं उपनिषद्शास्त्र रूपी महाधनुष ग्रहणकर उसमें ध्यान और उपासनाका तीक्ष्ण बाण संधान और सब इन्द्रियोंको अपने अपने॥ २॥ विषयसे खैंचकर तद्गत चित्तसे उस ब्रह्मरूप लक्ष्यको विद्ध करै ॥ ५ ॥ जिस धनुआदिका विषय कहा है वह भली भांति वर्णन करती हूं इस ब्रह्मरूप लक्ष्यवेधमें ॐकार वा देवी प्रणवही धनु है जिसप्रकार लक्ष्यमें बाणप्रवेशका कारण धनुषही है इसीप्रकार चित्तरूपी लक्ष्यमें प्रवेशसम्बन्धका प्रण वही कारण है प्रणवका अभ्यास करते २ उससे संस्कृत हो प्रणवको अवलम्बनपूर्वक अप्रतिबद्ध भावसे ब्रह्ममें स्थिति कीजाती है, इसमें आत्मा अर्थात् अन्तःकरणही शर है जिस प्रकार शर लक्ष्यको विद्ध करताहै इसीप्रकार अन्तःकरणही आत्माको विद्ध करताहै इसीकारण अन्तःकरणको शर कहागया है इस स्थलमें ब्रह्मही लक्ष्यवस्तु है साधक अप्रमत्त चित्तसे इस लक्ष्यको विद्ध करै तो बाण जिस प्रकार लक्ष्यभेद करके उसके संग एकात्मताको प्राप्त होता है इसीप्रकार साधकभी ब्रह्मके संग एकात्माको प्राप्त होसक्ते हैं ॥ ॥ ६ ॥ वह ब्रह्मपदार्थ अतिदुर्लक्ष्य वस्तु है इससे भलीभांति लक्ष्य करनेको फिर कहा जाता है, जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सब इन्द्रियें और प्राणोंके सहित

मन स्थित है, उसीको आत्मा जानना चाहिये, हे देवताओ ! इसको जानकर अन्य अपर विद्यारूप वाक्योंका त्याग करै यह ब्रह्मज्ञान ही मुक्तिका सेतु अर्थात् संसार सागरसे तारनेका हेतु है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार रथकी नाभिमें सब आरे मिलकर सन्निविष्ट रहते हैं इसीप्रकार जिस हृदयमें नाडियें प्रविष्ट हुई हैं उसी हृदयमें बुद्धिवृत्तिका साक्षीरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिके द्वारा अनेकरूपयुक्त होकर स्थिति करता है ॥ ८ ॥ ॐकारका अवलम्बन कर यथोक्त प्रकारसे उसी आत्माकी चिन्ता करनी चाहिये संसारसागरके पार जानेकी प्राप्तिमें तुम निर्विघ्न हो यह भगवतीका आशीर्वाद है, तुम अविद्यारहित ब्रह्मस्वरूपको अवगत हो, वह ब्रह्म जिस स्थानमें प्रतिष्ठित है सुनो जो सर्वज्ञ सर्ववित् और जिसके जगत्सृष्टि आदिरूपकी विभूति पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, वह प्रकाशशाली आत्मा दिव्य हृदयकमलमें प्रतिष्ठित होनेसे प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ उस आत्माकी मनोवृत्तिद्वारा भावना होती है, इसी कारण उसको मनोमय कहते हैं, यही प्राण और शरीरका नेता यही अन्नमय हृदयपिण्डमें बुद्धिको स्थित कर प्रतिष्ठित है, विवेकी पुरुष इसको भलीभांति जानसक्ते हैं वह आनन्दरूप दुःखसे परे है, अविनाशीरूपसे प्रकाशित होता है ॥ १० ॥ आत्मज्ञानका फल कहती हैं उस परमात्माका साक्षात् कार होनेसे हृदयग्रंथि अर्थात् चैतन्य और अहंकारका तादात्म्यभाव नष्ट होजाता है, समस्त ज्ञेयवस्तु विषयक सन्देह दूर होजाता है प्रारब्धके अतिरिक्त सब कर्म नष्ट होजाते हैं जब उस परात्परका साक्षात्कार होता है ॥ ॥ ११ ॥ फिर पूर्वोक्त विषयको संक्षेपसे कहती हूं यह ब्रह्म ज्योतिर्मय परकोश अर्थात् आनंदमयकोशमें प्रतिष्ठित है यह सत्वादि तीनों गुणरहित निष्फल (मायारहित) स्वच्छवस्तु है, यह सर्वप्रकाशक सूर्यादिकाभी प्रकाशक है आत्मवित् जिसको बड़े परिश्रमसे जान्ते हैं वह हिरण्मय परकोशमें स्थित है ॥ १२ ॥ उस ब्रह्मको सूर्य प्रकाश नहीं करसक्ते, चन्द्र तारा विजली वा अग्निभी उसके प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं, बहुत क्या यह सम्पूर्ण जगत् उस स्वप्रकाश आत्मासेही प्रकाशित होता है उससेही यह सब प्रकाशित है ॥ १३ ॥ यह अमृतमय ब्रह्मही आगे पीछे दक्षिण उत्तर नीचे और ऊपर भागमें स्थित है अधिक क्या इस सब जगत्कोही ब्रह्ममय जानना चाहिये ॥ १४ ॥ हे गिरिराज ! जो पुरुष श्रेष्ठ इसप्रकार अनुभव कर सक्ते हैं वही कृतार्थ हैं वह ब्रह्मस्वरूप प्रसन्नस्वभाव होकर शोक और विषयकी कांक्षा रहित होते हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिराज ! द्वैतभावही भयका कारण है द्वैतभाव दूर होनेसे

फिर संसारभय नहीं रहता, मैं अद्वैतभावनिष्ठसे वियुक्त नहीं हूं और वह मुझसे पृथक् नहीं है॥ १६॥ हे पर्वतराज! यह निश्चय जानो, वह ज्ञानी व्यक्ति मैं हूं, जो मैं हूं सो वह ज्ञानी है, जिस किसी स्थानमें ज्ञानी क्यों न रहे उसी स्थानमें उसको मेरा दर्शन प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मैं तीर्थ कैलास और वैकुण्ठमें निवास नहीं करती परन्तु जो ज्ञानी मुझमें परायण है उसीके हृदयकमलमें वास करती हूं ॥ १८ ॥ जो कोई मुझमें निष्ठावाले ज्ञानीकी एकवार पूजा करता है उसको मेरी पूजाका कोटिगुण फल होता है, जिसका चित्त चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें लीन हुआ है उसका वंश पवित्र है उसकी माता कृतकृत्य ॥ १९ ॥ और उस पुरुषसे पृथ्वी पुण्यशालिनी होती है हे पर्वतराज! आपने जो मुझसे ब्रह्मज्ञानका विषय पूँछा ॥२०॥ वह मैंने सब कह दिया इस विषयमें अब कुछ कहना नहीं है यह ज्येष्ठपुत्र भक्तिमान् शीलसम्पन्न ॥ २१ ॥ यथोक्त शिष्यसे कहना अन्यसे नहीं कहना जिसकी इष्टदेवमें पराभक्ति होती है और देवताके समान गुरुमें भक्ति होती है ॥ २२ ॥ उसीके निमित्त श्रेष्ठ पुरुष यह ब्रह्मविद्या प्रकाशकरते हैं अर्थात् उसी महात्माको यह विद्या प्रकाशित होतीहै जो इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं वह साक्षात् परमेश्वरस्वरूप हैं॥ २३॥ इस विद्या-को प्राप्त होकर शिष्य प्रत्युपकारमें असमर्थ होता है इससे जीवनपर्यन्त गुरुके समीप ऋणी रहता है, जो ब्रह्मरूपमें युक्त करते हैं वह ब्रह्मजन्मदाता गुरु माता पिता सेभी अधिक पूज्य हैं ॥ २४ ॥ पितासे प्रगट होकर जन्म मरण होनेसे नष्ट होते हैं परन्तु ब्रह्मरूप जन्मसे फिर कभी नष्ट नहीं होता, हे पर्वतराज! "तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन्" इस श्रुतिनेभी कहाहै कि ब्रह्मदाता गुरुका कार्य स्मरण कर कभी उससे द्रोह न करै ॥ २५ ॥ इसकारण शास्त्रके सिद्धान्तअनुसार ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है। शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षक होसक्ताहै पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव कभी उसकी रक्षा नहीं करते ॥२६॥ हे पर्वतराज! इसकारण काय मन वचनसे सर्वदा यत्नपूर्वक श्रीगुरुको संतुष्ट करै ॥ २७ ॥ अन्यथा वह कृतघ्नी होगा और कृतघ्न पुरुषकी निष्कृति नहीं होती गुरुके वचन उल्लंघन करनेसे क्या दशा होती है सो कहते हैं दध्यङ्नामक आथर्वण मुनिने इन्द्रसे प्रार्थना की कि आप मुझे ब्रह्मविद्या दीजिये इन्द्रने कहा विद्या तौ दूंगा पर यदि आप अन्य किसीको यह विद्या दोगे तो मैं तुम्हारा मस्तक छेदन करूंगा, उनके स्वीकारकरनेपर इन्द्रने ब्रह्मविद्या दी ॥ २८ ॥ तब कुछ काल उपरान्त दोनों अश्विनीकुमारोंने मुनिके पास आय विद्याकी प्रार्थना की

मुनिने कहा विद्या देनेसे इन्द्र मेरा मस्तक छेदन करेगा तब अश्विनीकुमार बोले हम आपका यह मस्तक छेदनकर आपके देहमें अश्वका मस्तक लगाये देते हैं उस मस्तकसे आप हमको विद्या उपदेश कीजिये, जब इन्द्र आपका यह मस्तक छेदन करेगा तब हम आपका पूर्वशिर संयुक्त करदेंगे मुनिने सम्मत हो उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया तब इन्द्रने आकर उनका वह मस्तक छेदन किया,तब अश्विनीकुमारोंने॥ २९॥ उनका मुख्य शिर जोडकर फिर उनके मुख्य शिरसे ब्रह्मविद्या सुनी यह कथा श्रुतिसिद्ध है इस प्रकार संकटसे प्राप्त होनेवाली विद्याको जिसने प्राप्त किया. हे पर्वतराज ! वह धन्य और कृत कृत्य हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७. ॥

हिमालय बोले हे मातः ! अधिरागी मध्यम अधिकारी पुरुषको जिस प्रकार सुख पूर्वक ज्ञानलाभ होसके इस समय आप वही अपना भक्तियोग कहो ॥ १ ॥ देवीने कहा हे नगेन्द्र ! मुक्ति प्राप्तिके निमित्त तीन मार्ग हैं कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग ॥ २ ॥ इन तीनोंमें भक्तियोगही सहजमें सिद्ध होता है कारण कि, यह योग द्रव्यव्यय और शरीरकी पीडाके विना केवल मनकी वृत्तिसेही संपादित होता है, इससे सुलभ है ॥ ३ ॥ सत्व, रज, तम इन तीन प्रकारके गुणभेदसे मनुष्यकी भक्ति सात्विकी राजसी और तामसी ऐसी तीन प्रकारकी होती है,जो दम्भप्रकाशपूर्वक दूसरेको पीडा देनेके निमित्त ॥ ४ ॥ मात्सर्य और क्रोधादियुक्त होकर उपासना करताहै उसकी तामसी भक्ति है और जो परपीडादिसे रहित हो अपने कल्याणके निमित्तही ॥ ५ ॥ सकाम भावसे यश और भोगमें लोलुप हो अतिभक्तिसे उस उस फलप्राप्तिके निमित्त अत्यन्त भक्तिसे उपसना करते हैं ॥ ६ ॥ और अपनी अज्ञतासे हुई भेदबुद्धिद्वारा मुझे अपनेसे अन्य जानते हैं हे नगाधिप ! उस पामरकी भक्ति राजसी है ॥ ७ ॥ परमात्माको अर्पणकिये कर्मही पापनाश करनेमें समर्थ होते हैं वह वेदोक्त कर्म दिन रात मुझे अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार निश्चय कर जो भेदबुद्धिसे मेरी प्रसन्नताके निमित्त नित्यकर्मानुष्ठान करताहै हे पर्वतराज ! उसकी सात्विकी भक्ति है ॥ ९ ॥ यह सात्विकी भक्ति परम प्रेमरूपा और परभक्तिकी प्रापिका है किन्तु यह स्वयंही परा भक्ति नहीं है कारण कि, इसमें भेदबुद्धि वर्तमान रहती है

परन्तु राजसी और तामसी भक्ति परभक्तिकी प्रापिका नहीं इससे तामसी और राजसी भक्तिका त्यागकरके इसकाही आश्रय करै ॥ १० ॥ हे नगेन्द्र ! अब मैं पराभक्तिको वर्णन करतीहूं तुम सुनो जो कोई सदा मेरे गुणश्रवण और सदा मेरे नामको कीर्तन करताहै ॥ ११ ॥ जिसका मन कल्याण और गुण रत्नका आकर मुझमेंही तेलधाराके समान अविच्छिन्नभावसे सदा स्थित रहता है ॥ १२ ॥ और उसमें किसी फलके हेतु व किसी फलकी आकांक्षा नहीं करता तथा सामीप्य, सार्ष्टि सायुज्य और सालोक्य मुक्तिकी भी कामना नहीं करता ॥ १३ ॥ और जो प्राणी मेरी सेवासे अधिक और कुछ नहीं जान्ता, जो सेव्य-सेवकभाव त्यागकर मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं करता ॥ १४ ॥ जो जितेन्द्रिय हो परानुरक्तिपूर्वक मेरीही आकांक्षा करता है और मुझको अपनेसे पृथक् न करके मैंही सच्चिदानंदरूप हूं ऐसा जानता है ॥ १५ ॥ और जो सब जीवोंमें मेराही रूप जान्ता है अपने परायेमें समान प्रीतियुक्त है ॥ १६ ॥ जो चैतन्यके समानत्वसे सर्वत्र विद्यमान् सर्वस्वरूपिणी मेरे सहित सदा सब जीवोंका अभिन्नत्व जान्ता है ॥ १७ ॥ हे नगेश्वर ! जो भेद बुद्धि त्यागके कारण चण्डालपर्यन्त सब जीवोंको नमस्कार और सत्कार करता है औरभेदवर्जनसे कहीं भी जिसकी द्रोहबुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जो मेरा मेरे भक्तोंका दर्शन मेरा शास्त्रश्रवण और मेरे मंत्रादिविषयमें श्रद्धायुक्त है ॥ १९ ॥ मेरेहीमें प्रेमसे आकुलमति हो मेरी कथामात्र सुननेसे रोमांचित शरीर होता है प्रेमके आंसुओंसे जिसके नेत्र पूर्ण और गद्गद कण्ठ होता है ॥ २० ॥ हे नगेश्वर! जो अनन्यभावसे जगत्की योनि सर्व कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीकी पूजा करता है ॥ २१ ॥ जो भक्तिपूर्वक कृपणता त्याग मेरे नित्य नैमित्तिक के दिव्यव्रत करता है ॥ २२ ॥ जिसको स्वभावसे ही मेरे उत्सव करने और देखनेकी इच्छा रहती है हे भूधर! ॥ २३ ॥ जो मेरे नाम ऊंचे स्वरसे लेकर गाते और नृत्य करते हैं जो अहंकार और देहके तादात्म्यभावसे रहित हैं ॥ २४ ॥ जो कोई यह समस्त ही प्रारब्धकर्मानुसार होता है यह जानकर मेरे ध्यानके अतिरिक्त देहरक्षादि विषयमेंभी चिन्ता नहीं करते ॥ २५ ॥ उन पुरुषोंकी यह भक्ति परा भक्ति कहाती है, जिसमें देवीविचारके अतिरिक्त अन्य किसी विषयकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज ! इसप्रकार तत्त्वसे जिसको पराभक्ति प्राप्त हुई है वह तत्काल ही मेरे चिद्रूपमें लीन हो जाता है ॥ २७ ॥ जिस ज्ञानसे भक्ति और

ज्ञानकी पूर्णता होती है इस कारण वैराग्य और भक्तिकी पराकाष्ठाकाही नाम ज्ञान है ज्ञानमें यह दोनों ही हैं ॥ २८ ॥ हे पर्वतराज ! जो भक्तिकरकेभी प्रारब्धवश मेरे ज्ञानके अधिकारी नहीं होते वह मणिद्वीपमें गमनकरते हैं॥ २९ ॥ हे पर्वतराज! वहां जाकर इच्छा न करनेसे भी अनेक भोगोंकी प्राप्ति होती है, उसके अन्तमें मेरा चिद्रूप ज्ञानलाभ करकै ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे मुक्त होजाता है. कारण कि, ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती यहां जिसको संवित् स्वरूप हृदयमें प्राप्त प्रत्यगात्माका ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥ तो मेरे सम्वित् रूपका ज्ञान होनेसे उसके प्राण उत्क्रान्त नहीं होते इस शरीरमेंही लय होजाते हैं "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इतिश्रुतेः उसका ब्रह्मके साथ अभेद होता है " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " इति श्रुतेः ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार कंठमें स्थित सुवर्णका भ्रमवश नष्ट होना जानाजाता है और भ्रमके नष्ट होनेसे प्राप्त वस्तुकीही प्राप्ति मानी जाती है ॥ ३३ ॥ हे नगसत्तम ! मेरे चिद्रूपतनुविहित घटादिकार्य अविदित माया-रूपसे भिन्न हैं जिसप्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब पडता है इसीप्रकार इस देहमें आत्माका अनुभव होता है और जिसप्रकार जलमें प्रतिबिम्ब पूर्वकी अपेक्षा विविक्तरूपसे प्रकाशित होता है इसीप्रकारसे पितृलोकमें देहसे विविक्तभावमें आत्माका अनुभव होता है ॥ ३४ ॥ जैसे छाया और आतपका भेद प्रकाशस्वरूपसे स्वच्छरूपसे दीखता है इसीप्रकार मणिद्वीपमें द्वैतभाववर्जित ज्ञान होता है ॥ ॥ ३५ ॥ जो वैराग्यवान् होकर पूर्णज्ञान प्राप्त हुये विना प्राणत्याग करते हैं वह प्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करके ॥ ३६ ॥ फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घर जन्म ग्रहणकर साधन करने उपरान्त फिर ज्ञानलाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! एक जन्ममें नहीं अनेक जन्मोंमें ज्ञान होता है इसकारण सब प्रयत्नसे ज्ञानको आश्रय करै ॥ ३८ ॥ यदि मनुष्यजन्म प्राप्त होकर ज्ञानलाभ न किया तो विनाश होगा. कारण कि, मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है उसमें भी ब्राह्मण और उसमें भी वेदप्राप्ति बहुतही दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, और श्रद्धा यह षट्सम्पत्ति, योगसिद्धि और उत्तम गुरुकी प्राप्ति यह इस लोकमें बडी दुर्लभ है ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंकी पटुता शरीरका संस्कार और अनेक जन्मोंके पुण्योदयसे मोक्षमें इच्छा होती है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य साधनसे सफल होनेवाले इस शरीरको प्राप्त करके ज्ञानके निमित्त यत्न नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसकारण यथाशक्ति ज्ञानप्राप्तिके निमित्त यत्न करे तो

अवश्य उसको पदपदमें अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जैसे दूधमें घृत निमग्न है इसीप्रकार सब भूतोंमें ज्ञान निवास करता है, उसकी मंथानभूत मनसे सदा मथना चाहिये ॥ ४४ ॥ ज्ञानको प्राप्त होकरही यह प्राणी कृतार्थ होता है यह वेदान्तकी घोषणा है यह संक्षेपसे आपके प्रति सब वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

हिमालय बोले हे देवि ! इस पृथ्वीमें तुम्हारे मुख्य और प्रिय कितने स्थान हैं सो तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे मातः ! जिन सब व्रत और उत्सवका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होते हैं अपने प्रीतिदायक उन सब व्रत और उत्सवका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! मैं सर्वाधिष्ठानस्वरूपिणी हूं इसकारण भूमण्डलमें जितने स्थान विद्यमान हैं वह सबही मेरी अधिष्ठान भूमि है और मैं सब कालमयी हूं इसकारण सब कालही मेरा व्रत और उत्सवात्मक है. इस कारण जिस समय जिसका अनुष्ठान करै उसकोही मेरी प्रीतिप्रद जाने ॥ ३ ॥ पर तथापि भक्तवत्सलतासे कुछ तुमसे कहती हूं. हे नगराज ! वह सावधान होकर मुझसे सुनो ॥ ४ ॥ दक्षिणदेशमें कोलापुर (करवीर) स्थानमें लक्ष्मीनामसे सदा स्थित हूं सह्यनाम पर्वतमें मातृपुरस्थानमें रेणुकारूपसे निवास करती हूं ॥ ५ ॥ तुलजापुर और सप्तशृंग स्थानमें हिंगुला और ज्वालामुखी निवासकरती हैं ॥ ६ ॥ यह शाकम्भरी, भ्रामरी, श्रीरक्तदन्तिका और दुर्गाका स्थान है ॥ ७ ॥ विन्ध्याचल निवासिनीका सर्वोत्तम स्थान है, कांचीपुरमें अन्नपूर्णाका महास्थान ॥ ८ ॥ यही पुर भीम देवी विमला श्रीचन्द्रकला और कौशिकीका महास्थान है ॥ ९ ॥ नीलपर्वतके शृंगमें नीलाम्बरीका परमस्थान और सुन्दर श्रीनगरको जाम्बूनदेश्वरीका परम स्थान जानो ॥ १० ॥ नेपालमें गुह्यकालीका उत्कृष्ट स्थान है. चिदम्बरदेशमें मीनाक्षीका परमस्थान है ॥ ११ ॥ वेदारण्यक महास्थानमें सुन्दरी देवी, एकाम्बर महास्थानमें पराशक्ति स्थित रहतीहै ॥ १२ ॥ महालसा, योगेश्वरी और नीलसरस्वतीका स्थान चीनदेशमें है ॥ १३ ॥ वैद्यनाथमें बगलाका सर्वोत्तमस्थान है मणिद्वीपमें मुझ भुवनेश्वरीका परम स्थान है ॥ १४ ॥ जिस कामरूदेशमें सतीका

योनिमंडल गिराहै, वह कामाख्या योनिमंडल त्रिपुरभैरवीका महास्थान है भूमण्डलमें यह क्षेत्ररत्न है इसकारण ऐसा दूसरा स्थान नहीं है ॥ १५ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है इस स्थानमें महामाया प्रत्येक मासमें रजस्वला होती है ॥ १६ ॥ यहांके सब देवता पर्वतभावको प्राप्त हो वहां निवास करते हैं ॥ १७ ॥ वहांकी सब पृथ्वी देवीरूप है ऐसा पंडित कहते हैं. इस कामाख्या योनि-मण्डलसे श्रेष्ठ दूसरा स्थान नहीं है ॥ १८ ॥ पुष्करक्षेत्र गायत्रीका परम स्थान है अमरेशमें चण्डिका और प्रभासमें पुष्करेक्षिणी निवास करती हैं ॥ १९ ॥ नैमिषमहा-स्थानमें लिंगधारिणी देवी, पुष्कराक्षमें पुरहूता और आषाढी स्थानमें रति निवास करतीहैं ॥ २० ॥ चण्डमुण्डके महास्थानमें दण्डिनी, परमेश्वरी, भारभूतिस्थानमें भूति नकुलस्थानमें नकुलेश्वरी निवासकरतीहैं ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रस्थानमें चन्द्रिका, श्रीपर्वतमें शांकरी जप्येश्वरमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें सूक्ष्मा निवास करती हैं ॥ २२ ॥ उज्जयनीमें शांकरी मध्यमेश्वरमें शर्वाणी केदार महाक्षेत्रमें प्रसिद्धमार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवस्थानमें भैरवी गयामें मंगला कुरुक्षेत्रमें स्थाणुप्रिया नाकुलमें स्वाय-म्भुवी ॥ २४ ॥ कनखलमें उग्रा विमलेश्वरमें विश्वेशा अट्टहासमें महानन्दा महेन्द्र पर्वतमें महान्तका ॥ २५ ॥ भीम स्थानमें भीमेश्वरी वस्त्रापथमें भवानी शांकरी अर्धकोटिस्थानमें रुद्राणी ॥ २६ ॥ अविमुक्त स्थानमें विशालाक्षी महालयमें महाभागा गोकर्णमें भद्रकर्णी भद्रकर्णमें भद्रा ॥ २७ ॥ सुवर्णाख्य स्थानमें उत्पलाक्षी स्थाणुस्थानमें स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला छगलंडस्थान [दक्षिण देशमें समु-द्रके निकट है] में प्रचण्डा ॥ २८ ॥ कुरण्डमें त्रिसंध्या माकोटमें मुकुटेश्वरी मण्डलेशमें शाण्डकी कालंजरमें काली ॥ २९ ॥ शंकुकर्णमें ध्वनि स्थूलकेश्वरमें स्थूला और ज्ञानियोंके हृदयकमलमें परमेश्वरी देवी हृल्लेखा प्राणशक्ति रूपसे निवास करती हैं ॥ ३० ॥ हे नगेश्वर! यह सब स्थान देवीके प्रिय हैं उन उनक्षेत्रोंका माहात्म्य सुनकर ॥ ३१ ॥ उसमें कहीं विधिके अनुसार देवीकी पूजा कर. हे नगोत्तम! अथवा सब पुण्यक्षेत्र काशीमें विद्यमान हैं ॥ ३२ ॥ देवीकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य नित्य काशीमें निवास करै उन स्थानोंको देख-ताहुआ निरन्तर देवीका जप करै ॥ ३३ ॥ और भगवतीके चरणकमलका ध्यान करताहुआ भवबंधनसे छूटजाता है. यह देवीके नाम जो प्रभातकाल उठकर पढताहै ॥ ३४ ॥ हे नगसत्तम! उसीसमय उसके पाप नष्ट होजाते हैं और ब्राह्मणोंके समीप श्राद्धकालमें जो निर्मल नाम पढता है ॥ ३५ ॥ उसके सब पितर मुक्त होकर पर-

गतिको प्राप्त होते हैं. हे सुव्रत! अब तुमसे व्रतोंको कहती हूं ॥ ३६ ॥ नरनारियोंको यत्नपूर्वक व्रतानुष्ठान करना चाहिये अनन्तर तृतीयाव्रत, रसकल्याणनीव्रत ॥ ३७ ॥ आर्द्रानन्दकरव्रत यह तृतीयाके व्रत हैं शुक्रवारका व्रत कृष्णाचतुर्दशीका व्रत ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रत प्रदोषव्रत यह चारप्रकारके व्रत हैं इन व्रत और प्रदोषसमय देवदेव महादेव देवीको आसनमें बैठाय ॥ ३९ ॥ देवताओंके सहित देवीके सन्मुख नृत्य करतेहैं इन व्रतोंमें उपवसा कर प्रदोषके समय मंगलमयी शिवाका पूजन करै ॥ ४० ॥ और जो प्रति पखवारेमें ऐसा करताहै उसपर देवी अधिक प्रसन्न होतीहै हे नग! सोमवारका व्रत मुझको अतिप्रिय है ॥ ४१ ॥ उसमेंभी देवीको पूजनकर रात्रिमें भोजन करै दोनों नवरात्रियोंमें व्रत मेरा प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४२ ॥ इस-प्रकारसे और भी जो मत्सर हीन होकर मेरी प्रीतिके निमित्त नित्यनैमित्तिक व्रत करता है वह वे उपांगललितादि व्रत हैं ॥ ४३ ॥ इनके करनेसे मेरी सायुज्य मिलती है वह मेरा भक्त और मुझे प्रियहै फिर चैत्र शुक्ल तीजको दोला उत्सव करै शंकर सहित देवीकी कुंकुम,अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगंध, माला, धूप, दीपादिसे पूजाकर झुलावै इत्यादि और भी उत्सव करै ॥ ४४ ॥ आषाढपूर्णिमाको शयनोत्सव वा इसके आगेकी तीज कार्त्तिक पूर्णिमाको जागरणोत्सव, आषाढ शुक्लतृतीयाको रथोत्सव करै इसमें पृथ्वीको रथ,चन्द्रसूर्यको चक्र वेदोंको अश्व ब्रह्माको सारथि माने अनेक मणियोंसे जटित फूलमालायुक्त रथकी कल्पना कर उसमें शिवाको बैठावै और लोकोंकी रक्षा तथा लोकोंके देखनेको अम्बा रथपर चढी हैं यह भावना करे रथके चलनेमें शत २ जय शब्द करै. हे भगवती! हम दीन जनोंकी रक्षा करो. इसप्रकार स्तोत्र पढ बाजे बजाय सीमाके समीप रथ लेजाय पूजा करै. फिर घर लावै उमा संहिता (शिवपुराण)में यह कथा वर्णन की है. चैत्रपूर्णिमामें दमनोत्सव ॥ ४५ ॥ श्रावणपूर्णिमाको पवित्रोत्सव मेरा प्रियकारक है, इसप्रकार मेरे भक्त दूसरे उत्सवोंकोभी सदा करैं ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे मेरे भक्त सुवासिनी कुमारी और बटुकोंको मेरा स्वरूप जानकर तद्गतचित्त हो भोजन करावे ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्य कृपणता छोडकर कुसुमादिद्वारा इनकी पूजा करै जो सावधान हो प्रतिवर्ष भक्तिसे ऐसा करता है ॥ ४८ ॥ वह धन्य कृतकृत्य और मेरी प्रीतिका पात्र है इसमें सन्देह नहीं.यह अपनी प्रियकर वस्तुओंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ यह वार्ता अशिष्य और अभक्तको कभी न देनी चाहिये ॥ ५० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ३९.

हिमालय बोले हे महेश्वरि ! देवदेवि ! महेशानि ! करुणासागर! जगदम्बा ! अब भलीप्रकार अपने पूजाविधानको कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे राजन् ! मैं अपनी प्रियकर पूजाविधि कहती हूं हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम अतिशय श्रद्धापूर्वक श्रवण करो ॥ ॥ २ ॥ बाह्य अभ्यान्तरके भेदसे मेरी पूजा दोप्रकारकी है उसमें बाह्यभी वैदिक और तांत्रिक भेदसे दोप्रकारकी है ॥ ३ ॥ हे भूधर ! वैदिकपूजाभी मूर्ति भेदसे दोप्रकारकी है, उसमें विराट्रूपसे देवीका ध्यानरूप पहली पूजा और करचरणादियुक्त देवीकी मूर्तिका ध्यानकर वैदिकमंत्रोंसे देवीका आवाहन और विसर्जन करना यह दूसरी पूजा है इनमें वैदिकमंत्रमें दीक्षित पुरुषको वेदविधिके अनुसार वैदिकी पूजा ॥ ४ ॥ और तंत्रमार्गमें दीक्षित पुरुषको तंत्रोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये. जो मूढ इस प्रकार पूजारहस्य न जानकर वैदिक तांत्रिक रीतिसे और तांत्रिकदीक्षावाले वैदिकरीतिसे पूजा करै तो ॥ ५ ॥ इस विपरीतभावके कारण वह मूढ़ पतित होता है अब प्रथम वैदिकी पूजाका विषय वर्णन करती हूं ॥ ६ ॥ हे भूधर ! जो तुमने मेरे साक्षात् पररूपका दर्शन किया है जिसमें अनन्तशिर अनन्तनेत्र अनन्त चरण हैं ॥ ७ ॥ जो सब शक्तिसे युक्त प्रेरक परात्पर है उसीका निरन्तर पूजन करै, इसीका नमस्कार ध्यान और स्मरण करै ॥ ८ ॥ हे नगराज ! यही प्रथम वैदिकी पूजाका स्वरूप है यह पूजा शान्त, सावधानमन, दंभ अहंकारहीन होकर करनी चाहिये ॥ ९ ॥ उसीमें तत्पर उसीका यजन और उसीकी शरण हो उसीको चित्तसे देखकर सदा जप ध्यान करो ॥ १० ॥ अनन्यप्रेमभक्तिसे मेरे भावको आश्रित हो यज्ञोंसे मेरा यजन और तप दानसे मुझ विराट्रूपकोही सन्तुष्ट करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार करते हुए मेरे अनुग्रहसे संसारबंधनसे मुक्त होगे मुझमें तत्पर और मुझमें आसक्त चित्त भक्तश्रेष्ठ कहे हैं ॥ १२ ॥ यह मेरी प्रतिज्ञा है ऐसे भक्तोंको मैं बहुत शीघ्र उद्धार करदेती हूं हे गिरिराज! कर्मयुक्त ध्यानयोग, अथवा भक्तिमिश्रित ज्ञानयोगसेही ॥ १३ ॥ मैं प्राप्त होसकती हूं. केवल कर्मसेही कोई मुझे प्राप्त नहीं करसक्ता धर्मसे भक्ति और भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिमें प्रतिपादन किये कर्मकोही धर्म कहते हैं श्रुतिस्मृतिके विपरीत अन्य शास्त्रोंका कहाहुआ धर्म यथार्थ धर्म नहीं किन्तु धर्माभास है ॥ १५ ॥ सर्वज्ञ और

सब शक्तिसम्पन्न मेरे स्वरूपसेही वेद प्रगट हुए हैं, इसकारण वेदके अप्रमाणकी शंका नहीं होसक्ती. कारण कि, मैं अज्ञानरहित हूं इससे मुझसे प्रगट हुए वेद भ्रान्तिरहित सत्यवस्तु हैं दूसरे शास्त्र अज्ञपुरुषोंद्वारा कल्पित हैं इससे वह वेदके सन्मुख अप्रमाण हैं इसीसे उनमेंका कहाहुआ धर्म धर्माभास है फलपक्षमें वेदोक्त धर्मही यथार्थ धर्म है ॥ १६ ॥ वेदोंका अर्थ ग्रहणकर स्मृतिशास्त्र प्रणीत हुआ है इससे मनुआदि महर्षि प्रणीत स्मृतिशास्त्रका ग्रहण होता है ॥ १७ ॥ स्मृति और पुराणादिमें जिसकिसी स्थलमें कटाक्षपूर्वक वेदविरुद्ध विषय कहागया वह वैदिकोंको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १८ ॥ कारण कि, वेदके अतिरिक्त अन्यशास्त्रकर्ताओंके वचन अज्ञानसंभूत हैं तो अज्ञानदोष वर्तमान होनेसे उनकी उक्तिका प्रमाण नहीं होसक्ता ॥ ॥ १९ ॥ इसकारण मुमुक्षुओंको धर्मज्ञानके निमित्त सर्वथा वेदमार्गका आश्रय लेना चाहिये जिसप्रकार लोकमें राजाकी आज्ञा कभी नष्ट नहीं होती ॥ २० ॥ इसीप्रकार सर्वेशानी राजराजेश्वरी मेरी श्रुतिरूप आज्ञाको मनुष्य कैसे त्यागसक्ते हैं ? अपनी आज्ञा रक्षा करनेको मैंने ब्राह्मण क्षत्रियजाति ॥ २१ ॥ उत्पन्न की है, इस कारण मेरा रहस्यरूप श्रुतिवाक्य अवश्य जानना चाहिये. हे भूधर! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है ॥ २२ ॥ और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब मैं शाकंभरी-आदि अनेक वेष रामकृष्णादि अवतार धारण करती हूं वेदके सद्भावसेही वेदरक्षक देवता और वेदविनाशक दैत्य हैं यह विभाग कल्पित हुआ है॥ २३ ॥ जो वेदोक्तधर्मका अनुष्ठान नहीं करते उनकी शिक्षाके निमित्तही नरकोंकी कल्पना की है जिनकी वार्तामात्रके श्रवणसे उनको भय प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ जो वेदधर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंका आश्रय करते हैं राजाको उन अधर्मियोंको अपने देशसे निकलवा देना चाहिये॥ २५॥ ब्राह्मणोंको उनके साथ संभाषण न करना चाहिये और उनको ब्रह्मभोजकी पंक्तिमें ग्रहण न करना चाहिये इस लोकमें जो औरभी अनेकप्रकारके शास्त्र हैं॥ ॥ २६ ॥ उनमें जो श्रुति स्मृति विरुद्ध हैं वे सब तामसी हैं यदि कहो कि, फिर शिवने तंत्र क्यों बनाये इसपर कहते हैं याम, कापालक, कौल, भैरवागम ॥ २७ ॥ जो पापी होकर वेदधर्माचरण करतेहैं अर्थात् जब पापियोंकी वेदधर्माचरणसे सद्गति होगी तो कर्मकी विचित्रताके अभावसे प्रपंच विचित्र न होगा इसप्रकार उनको अनेक फल दिखाकर उनकी प्रवृत्तिको मोहितकर वेदसे श्रद्धा च्यावित करनेको शिवजीने मोहनार्थ तंत्र निर्माण किये हैं कारण कि, पापी होनेसे वेदका अधिकार नहीं रहता इससे वे पापका फल.

पाकर शुद्ध हों पश्चात् वेदानुसार कर्म करै तथा दक्षके शाप, भृगुके शाप, दधीचिके शापसे जो ॥ २८ ॥ ब्राह्मण वेदसे बहिष्कृत हुए हैं उन ब्राह्मणोंको सोपानक्रमसे जन्मान्तरमें वेदाधिकारप्राप्तिके निमित्त कुछ परमेश्वरकी उपासना वक्तव्य है यह विचारकर ॥ ॥ २९ ॥ शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य यह पांचप्रकारके आगम शंकरने निर्माण किये ॥ ३० ॥ इनमें किसी २ अंशमें वेदानुकूल और कहीं २ वेदके विरुद्धभी कहा है इनमें वैदिकोंको वेदानुकूल अंशग्रहणमें दोष नहीं है. कारण कि, वायुसंहितामें लिखा है श्रौत अश्रौत भेदसे शिवागमन दोप्रकारका है श्रौतवेदका सार, और अश्रौत स्वतंत्र हैं, वैदिकोंको श्रौतअंश ग्रहणकरना कहा है ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदविरुद्ध अंशमें ब्राह्मण अधिकारी नहीं है जिनका वेदमें अधिकार नहीं है वही उस वेदविरुद्ध अंशके अधिकारी हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण वैदिकद्विजाति सब प्रयत्नसे वेदका आश्रय करै. कारण कि, वेदोक्त धर्मानुष्ठानसे उत्पन्नहुआ ज्ञानही परब्रह्मका प्रकाशक है ॥ ३३ ॥ जो सब प्रकारकी वासना त्यागकर मेरी शरण हुए हैं जो सब प्राणियोंमें दया करते मान और अहंकारसे वर्जित हैं ॥ ३४ ॥ मुझमें चित्त लगाये मुझमें प्राण अर्पण किये मेरे स्थानवर्णनमें निरत संन्यासी, वनवासी, गृहस्थी, ब्रह्मचारी ॥ ३५ ॥ जो सदा भक्तिसे इस विराट्स्वरूप उपासनानामक योगका अनुष्ठान करते हैं सदा भक्तिसे उपासना करते हैं उन नित्ययोगानुष्ठान करने वालोंका मैं अज्ञानसे उत्पन्न हुआ अंधकार ॥ ३६ ॥ अपने ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट करदेती हूं इसमें सन्देह नहीं. हे पर्वतराज ! इस प्रकार यह मैंने पहली वैदिकपूजाका ॥ ३७ ॥ स्वरूप संक्षेपसे कहा अब करचरणादिविशिष्ट मूर्तिपूजा दूसरी कहती हूं मूर्तिमें स्वच्छ भूमिमें सूर्यमंडल, चन्द्रमंडल ॥ ३८ ॥ जल, बाणलिंग, यंत्र, वस्त्र, हृदयकमलमें परात्परा जगम्बिका देवीका ध्यान करै ॥ ३९ ॥ जो सगुण अर्थात् सत्वादिगुणसम्पन्न करुणारसपरिपूर्ण युवती अरुणवर्ण सुन्दरताके सारकी सीमा सर्वांगसुन्दरी ॥ ४० ॥ शृंगाररसमें परिपूर्ण भक्तोंके दुःख देखतेही कातर होनेवाली प्रसादसे सुमुखी, अम्बा अर्धचन्द्रसे शोभितशिरवाली ॥ ४१ ॥ चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर और अभय धारण किये, आनंदरूपिणीकी वित्तके अनुसार षोडश उपचारसे पूजनकरै ॥ ४२ ॥ जबतक अभ्यन्तर पूजामें अधिकार न हो तब

तक इसीप्रकार पूजाकरता रहै जब अभ्यन्तरपूजाका अधिकार होजाय तो इच्छासे बाह्यपूजा छोडदे ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित संवित् वा ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है इस संवित स्वरूपमें चित्तके लीन करनेकोही आभ्यन्तरपूजा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इसकारण मेरे संवित्रूपमें एकान्तभावसे चित्त स्थापन करै. कारण कि, संवित् वा ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य समस्त जगत् मायामय मिथ्या है ॥ ४५ ॥ इसकारण संसारनाशके निमित्त आत्मस्वरूपिणी सर्वसाक्षिणी मेरी निर्विकल्प भक्तियोगयुक्त चित्तसे भावना करै ॥ ४६ ॥ इसके आगे बाह्यपूजाका विस्तार कहती हूं. हे पर्वतसत्तम ! तुम सावधान मनसे सुनो ॥ ४७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! साधक प्रभातही उठकर मस्तकके ब्रह्मरंध्रमें स्थित कर्पूरवर्णकी समान उज्वल सहस्रार कमलका स्मरण कर उसमें अपने अनुरूप गुरुके समान आकार स्मरण करै ॥ १ ॥ जो प्रसन्नतायुक्त उत्तम वेषसे भूषित भूषणोंसे सम्पन्न शक्ति पत्नीसहित है इसप्रकार पत्नीसहित गुरुका ध्यान करके देवी कुंडलिनीका ध्यान करै ॥ २ ॥ जो मूलाधारसे ब्रह्मरंध्रमें गमन करनेके समय प्रकाशमान अर्थात् चैतन्यरूपमें भासमान है और ब्रह्मरंध्रसे मूलाधारमें गमनकरनेके निमित्त आनन्दामृतमयी है, जो इसप्रकार सुषुम्ना पंथमें गमनागमनशील है उस पराशक्ति आनन्दरूपिणी कुंडलिनीकी मैं शरण होता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार ध्यान कर मूलाधारमें स्थित चैतन्यरूप अग्निकी कुंडलिनीरूप शिखाके भीतर मुझसच्चिदानंदरूपिणी का ध्यान करै फिर शौच संध्यावंदनादि सब कार्य करै ॥ ४ ॥ फिर वह द्विजोत्तम मेरी प्रीतिके निमित्त अग्निहोत्र करके होमान्तमें आसनपर आकर पूजाका संकल्प करै ॥ ५ ॥ इससे पहले भूतशुद्धि और मातृकान्यास करै मातृकान्यास हृल्लेखा अर्थात् मायाबीजद्वारा करै ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार हृदयमें रकार भ्रूमध्यमें ईकार मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करै ॥ ७ ॥ फिर प्रत्येक मंत्रमें किये न्यासोंको यथोक्त करै

अपने देहमें धर्मादि पीठकल्पना कर पूजा करै ॥ ८ ॥ फिर प्राणायामद्वारा विकसित हृदय कमलरूप मेरे स्थानमें पंच प्रेतासनपर स्थित महादेवीकी चिन्तना करै ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव यह पंचप्रेत कहे जाते हैं यह मेरे पादमूलमें सदा स्थित रहते हैं यह पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन पांच महाभूतोंके और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तितुरीय, अतीत इन पांचो अवस्थाओंके अधिपति हैं और मैं पंचभूत तुरीय और अतीत अवस्थासे भी परे ब्रह्मरूपिणी हूं ॥ १० ॥ ११ ॥ इसीकारण यह मेरे आसनको प्राप्त हुए हैं यह शक्तितंत्रमें प्रसिद्ध है इसप्रकार मेरा ध्यान कर मानस उपचारसे मेरा पूजन और जप करे ॥ १२ ॥ जपका फल श्रीदेवीको समर्पण कर फिर अर्घ्य स्थापन करै फिर अर्घ्यपात्रादिको स्थापन करकै पूजाके द्रव्योंकी शुद्धि करै ॥ १३ ॥ साधक मूलमंत्र वा फट् इस मंत्रसे अभिमंत्रित किये जलसे सब पूजाद्रव्य शुद्ध करै दिग्बंधकर गुरुओंको प्रणामपूर्वक ॥ १४ ॥ उनकी आज्ञाको ले पूर्वोक्त यंत्रादि द्वारा बाह्य पीठमें पूर्वमें भावनाकी हुई हृदयमें स्थित मेरी मनोहर मूर्तिको ॥ १५ ॥ प्राण स्थापन मंत्रद्वारा आवाहन करै, फिर भक्तिपूर्वक आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन ॥ १६ ॥ स्नान, दोवस्त्र, भूषण और गंध, पुष्प, यथायोग्य भक्तिसे देवीके निमित्त प्रदान करै ॥ १७ ॥ फिर भलीप्रकार यंत्रस्थ आवरण देवताकी पूजा करै यदि प्रतिदिन आवरण देवताकी पूजा न करसके तो शुक्रवारको करै ॥ १८ ॥ आवरण देवताको मूलदेवीका प्रभारूप जानना चाहिये और त्रिलोकीको उसकी प्रभा मंडलमें व्याप्त चिन्तन करै ॥ १९ ॥ इसप्रकार आवरण देवताओंको यथास्थानमें ध्यान और पूजादि करके फिर सावर्ण सायुध शक्तिसम्पन्न श्रीभुवनेश्वरीकी सुगंध गंधादि सुगंधित पुष्प ॥ २० ॥ नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणादि उपचारसे पूजा करै और हे हिमालय! तुम्हारे किये सहस्रनामसे मुझको संतुष्ट करै ॥ २१ ॥

---

१ उस पीठपर अनन्तायनमः पद्मायनमः अं सूर्यमंडलायनमः सं सत्वायनमः रंरजसेनमः तंतमसेनमः । पूर्वादिदिशाओंमें आं आत्मनेनमः । अं अंतरात्मनेनमः । पं परमात्मने नमः । ह्रींज्ञानात्मनेनमः । फिर पद्मके पूर्वादिदलमें जयायैनमः । विजयायैनमः । अपराजितायै नमः । नित्यायैनमः । विलासिन्यैनमः । दोग्ध्यै नमः । अघोरायैनमः । मध्ये मंगलायैनमः यह पीठशक्तिकी पूजा शारदामें है ।

तंत्रादिप्रोक्त कवच और "अहं रुद्रेभिः" यह सूक्त और भुवनेश्वरीउपनिषदमें "सर्वे वैदेवा देवीमुपतस्थुः" हृल्लेखा उपनिषदस्थ मंत्र ॥ २२ ॥ तथा महाविद्याके महामंत्रोंसे वारंवार देवीको संतुष्ट करै और प्रेमसे आर्द्र हृदय होकर देवीसे अपना अपराध क्षमा करावै ॥ २३ ॥ पुलकित अंग होकर प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण नेत्र हो गद्गद वचनसे नृत्यगीतादिद्वारा मुझको वारंवार संतुष्ट करै ॥ २४ ॥ कारण कि समस्त वेद और पुराणकी प्रतिपाद्य वस्तु मैंहूं. इसकारण वेदाध्ययन और पुराणोंके पाठद्वारा मुझे सन्तुष्ट करै॥२५॥और समस्त ऐश्वर्य अपनी देह सहित मेरे अर्पण करै फिर नित्य हवनकर ब्राह्मण और सुन्दर वस्त्रधारी कुमारी ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंके बालक तथा दूसरे पामरजनोंको भी देवीकी बुद्धिसे भोजन करावे फिर अपने हृदयमें देवीको प्रणामकर संहार मुद्राद्वारा विसर्जन करै ॥ २७ ॥ हे सुव्रत! सब मंत्रोंमें मायाबीज प्रधान है इसकारण मेरी सब पूजा इसी मंत्रसे करै ॥ २८ ॥ हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं सदा प्रतिबिम्बित हूं इसकारण हृल्लेखामंत्रसे दिया हुआ मानो सब मंत्रोंसे समर्पित होता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार मेरी पूजा करनेपर भूषणादिसे गुरुकी पूजा करै और अपनेको कृतकृत्य जाने जो इस प्रकारसे श्रीभुवनेश्वरीकी पूजा करता है ॥ ३० ॥ उसको कहीं कभी कुछभी दुर्लभ नहीं है देहान्तमें वह मेरे मणिद्वीपको सर्वथा प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ वह देवीका स्वरूप ही जानना चाहिये देवता उसके नित्य नमस्कार करते हैं हे राजन्! इसप्रकार आपसे यह देवीका पूजन कहा ॥ ३२ ॥ इसको भलीप्रकार विचारकर अपने अधिकारके अनुसार मेरा पूजन करो इससे तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥ ३३॥ यह गीताशास्त्र कभी अशिष्यके निमित्त न देना अभक्त, धूर्त और दुर्मनवालेको न देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शास्त्रका प्रकाश मानो माताके स्तनोंका उद्घाटन करना है, इस कारण यत्नसे इसको गुप्त रखना चाहिये ॥३५॥ भक्त शिष्य और ज्येष्ठ पुत्रके निमित्त देनाचाहिये, तथा

---

१ यह स्तोत्र कूर्मपुराणके बारहवें अध्यायमें है.

सुशील सुवेष देवीभक्तसे कहना उचित है ॥ ३६ ॥ श्राद्धकालमें यह ब्राह्मणोंके समीप पढै तो उसके सब पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले ऐसा कहकर भगवती वहांही अन्तर्धान होगई और देवीके दर्शनसे सब देवता भी प्रसन्नहुए ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले तब वही हैमवती देवी हिमालयके घर प्रगट होकर गौरीनामसे प्रसिद्धहुई और शंकरने उनका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ तब उनसे कार्तिकेयने जन्म लाभकरके तारक असुरको मारा "गौरी की उत्पत्ति ज्येष्ठशुक्ल चौथको अरुणोदयमें हुई यह रत्नावलीमें लिखाहै" यह गौरीकी उत्पत्ति कही अब लक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो पूर्वमें समुद्र मथनेके समय अनेक रत्न प्रगट हुए थे ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीकी प्राप्तिके निमित्त देवताओंने परम आदरसे उनकी स्तुति की तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त समुद्रसे लक्ष्मी निकलीं ॥ ४१ ॥ देवताओंने उनको भगवान् विष्णुको दिया जिससे वह बड़ी प्रसन्न हुईं हे राजन्! यह आपसे उत्तम देवीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ४२ ॥ यह गौरी और लक्ष्मीका प्रादुर्भाव सब कामनाका देनेवाला है यह रहस्य जिस किसीके प्रति नहीं कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ रहस्यमयी इस गीताको बड़े यत्नसे गुप्त रखना चाहिये हे पापरहित! तुमने जो विषय पूछा था वह सब संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह पवित्र पावन और दिव्य चरित्र है आपको अब और क्या सुननेकी इच्छा है? ॥ ४५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दोहा।

शिवाशंभुके पदकमल, प्रेमसहित मनलाय।
श्रीसप्तमस्कंधकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥